सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 54 : अंक : 08

नवम्बर 2021

प्रकाशन तिथि : 01.11.2021

मूल्य - एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 380/-

अमृतकण

गूढविद्यस्य सर्वेषां देहिनां ज्ञानसंभवः
उदयः स्वप्रकाशेन गुरुशब्देन कथ्यते

सब देहधारियों में गूढ़ विद्या से ही ज्ञान का सम्भव है। स्वप्रकाश से उदय होना गुरु शब्द से कहा जाता है।

◆ ◆ ◆

देही ब्रह्म भवेद्यस्मात्तत्कृतार्थं वदाम्यहम्
सर्वपापविमुक्तात्मा श्रीगुरुपादसेवनात्

जिस कृपा से देही (जीव) ब्रह्म हो जाता है उसके अर्थ को मैं कहता हूँ। सब पापों से मुक्त हुआ आत्मा श्री गुरुदेव के चरणों के सेवन से उस कृपा को प्राप्त करता है।

◆ ◆ ◆

सर्वतीर्थावगाहस्य प्राप्नोति सुफलं नरः
गुरोः पादोदकं पीत्वा जलं शिरसि धारयेत्

गुरुदेव के चरणोदक को पीकर जल को सिर पर धारण करे तो मनुष्य सब तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त करता है।

◆ ◆ ◆

शोषणं पापपंकस्य दीपनं ज्ञानतेजसां
गुरोः पादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम्

गुरुदेव का चरणोदक पाप रूपी कीचड़ को सुखाने वाला, ज्ञान रूपी तेज का प्रकाश करने वाला, और सम्यक् प्रकार से संसार रूपी समुद्र से पार करने वाला है।

◆ ◆ ◆

अज्ञानार्तिहरं चैव जन्मकर्मनिवारणम्
ज्ञानविज्ञानसिध्यर्थं गुरोः पादोदकं पिबेत्

अज्ञान रूपी दुःख के हरने वाले, जन्म कर्म के निवारण करने वाले गुरुदेव के चरणोदक को ज्ञान विज्ञान की सिद्धि के लिये पिये।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते—करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 54 नवम्बर 2021 अंक : 08

यस्मिन युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च

स एव काले भुवनस्य गोप्ता
विश्वाधिपः सर्व भूतेषु गूढ़ः।
यस्मिन युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च
तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाण शिछनन्ति।।

अर्थात् वही समय पर समस्त ब्रह्माण्डों की रक्षा करने वाला, समस्त जगत का अधिपति और समस्त प्राणियों में छिपा हुआ है। जिसमें वेदज्ञ, महर्षिगण और देवता लोग भी ध्यान द्वारा संलग्न हैं। उस परमदेव परमात्मा को जानकर ऐसे ही ध्यान द्वारा मनुष्य मृत्यु के बन्धनों को काट डालता है।

— श्वेता० उपनिषद

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	**विशेष लेख**- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	**सम्पादकीय**	6
3.	**श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा**- डॉ. विजय सिंह	9
4.	**प्रश्नोपनिषद् एक परिचय आध्यात्म परिचर्चा**- पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय	12
5.	**अद्‌भुत गुरु-भक्त- " गंगाधरण "**- अन्तु राम यादव	15
6.	**मन रूपी दर्पण**- श्रीमती सरिता भारद्वाज	18
7.	**" भारतीय कला पर सिद्धयोग का प्रभाव "**- डॉ. राजकिशोरी सिंह	23
8.	**ईश्वर-प्रणिधान से समाधि-लाभ**- श्री मनमोहन कृष्ण त्रिखा	25
9.	**क्या परमात्मा पक्षपाती है**- स्वामी विवेकानन्द	28
10.	**क्रिया योग**- श्री शिवनाथ मेहरोत्रा	29
11.	**सिद्धपीठ (कामरूप) कामाख्या**- पं. राजेन्द्र प्रसाद पाठक	34
12.	**'मोहन' मोहन में रमें!**- अशोक द्विवेदी	39
13.	**योग की प्राचीनता**- विधुशेखर	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 380.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

हमारा विशेष लेख–

प्राणायाम का अधिकारी कौन ?

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने इससे पहले अपने लेख में प्राणायाम की परिभाषा बतलाने का पूर्ण प्रयत्न किया है और प्राणायाम की परिभाषा समझाने के साथ–साथ उसके करने की क्या विधि है, यह भी समझाने का पूरा–पूरा प्रयत्न किया गया है। प्राणायाम में लगाये जाने वाले तीनों बंधों का वर्णन भली प्रकार से कर दिया गया है। प्राणायाम के अभ्यासी साधकों को चाहिए कि यदि वह प्राणायाम जैसी कठिन क्रिया को प्रारम्भ करते हैं तो अपनी योग्यता की जांच भली प्रकार से कर लें। शिव–संहिता में भगवान शिव ने योगोपासक साधकों के विविध प्रकार के साधन लिखे हैं, उनमें कौन साधक किस योग का अधिकारी है भिन्न–भिन्न प्रकार से समझाया है। उनमें से सर्व साधारण के हित के लिए सभी प्रकार के साधकों के लक्षण हम यहाँ लिख देना उचित समझते हैं। अधिकारी के विभागानुसार ही साधक अपनी उन्नति एवं विकास कर सकता है। जो साधक जिस विषय का अधिकारी नहीं है, यदि वह उस विषय की ओर अपना कदम बढ़ाता है तो वह उसकी अनधिकार चेष्टा है। परिणाम में कभी भी इष्ट सफलता को नहीं पा सकता। अतः साधक को चाहिए कि शास्त्रोक्त अधिकारानुसार ही स्वायत्त चेष्टावान होकर ही अपने आप को उन्नति के पथ पर बढ़ाये।

तीन प्रकार के योगाधिकारी

जिनमें से प्रथम मृदु साधक के लक्षण निम्नांकित पंक्तियों में लिखे जा रहे हैं–

मन्दोत्साही सुसंमूढो, व्याधिस्थो गुरुदूषकः।
लोभी पापमतिश्चैव, बह्वाशी वनिताश्रयः।।
चपलः कातरो रोगी, पराधीनोऽति निष्ठुरः।
मंदाचारो मंदवीर्यो, ज्ञातव्यो मृदुमानवः।।
द्वादशाब्दे भवेत्सिद्धिरेतस्य यत्नतः परम्।
मन्त्र योगाधिकारी स, ज्ञातव्यो गुरुणा ध्रुवम्।।

अर्थात् मंदोत्साही तमसावृत्त मूढ़चित्त वाला, आधिव्याधियों से ग्रसित, गुरु निन्दक,लोभी, जिसके मन बुद्धि में हर समय पापवासनायें रहती हों, बहुत अधिक भोजन करने वाला, स्त्री का वशानुवर्ती, कठोर बोलने वाला, मंद कर्मों वाला, मंद वीर्य वाला, इस प्रकार का जो साधक है वह मंदाधिकारी है। ऐसा साधक जो मंत्र योग का अधिकारी हो जिसमें ये लक्षण मिलते हों, उसको चाहिए कि वह साधक स्वाध्याय–परायण हो जाय। स्वाध्यायशील होकर ही समाधि प्राप्त करने का प्रयत्न करे। स्वाध्याय से ही उसको सफलता मिल सकती है।

स्वाध्यायशील व्यक्ति स्वाध्याय परायण होकर अवश्य ही समाधि को पा सकता है। क्योंकि

स्वाध्यायशील व्यक्ति स्वाध्याय परायण होकर अवश्य ही समाधि को पा सकता है। क्योंकि इस विषय में शास्त्र की आज्ञा है कि:–

स्वाध्यायाद्योगमासीत, योगात्स्वाध्याय मामनेत्।
स्वाध्याय योग संपत्या, परमात्मा प्रकाशते।।

ऐसे साधक को मंत्र योग प्राप्त करके उसके जप में लग जाना चाहिए। जब जप करता–करता थक जाए तब ध्यानाभ्यास में लग जाय। इस प्रकार जप और ध्यान परायण हुआ व्यक्ति समाधि के द्वार तक पहुँच जाया करता है। ऐसा साधक मंत्र योग का ही अधिकारी हो सकता है।

हठ योग का अधिकारी

स्थिर बुद्धिर्लये युक्तः, स्वाधीनो वीर्यवानपि।
महाशयो दयायुक्तः, क्षमावान् सत्यवानपि।।
शूरो वयस्थः श्रद्धावान्, गुरुपादाब्जपूजकः।
योगाभ्यासरतश्चैव, ज्ञातव्यश्चाधिमात्रकः।।
एतस्य सिद्धिः षड्वर्षे भवेदभ्यास योगतः।
एतस्मै दीयतो धीरो, हठ योगश्च सांगतः।।

अर्थात् स्थिर बुद्धि वाला, जिसके निश्चय बार–बार बदलते न रहते हों, लय योग के साधनों में सामर्थ्य रखता हो, सब प्रकार से स्वतन्त्र हो, किसी भी प्रकार की किसी की आधीनता न हो, वीर्यवान् हो, और जिसके विचार ऊँचे हों, प्राणी मात्र पर दया की भावना मन में जगती हो, क्षमाशील हो, समाधि योग में प्रवृति हो, सत्य जिसके मन में वास करता हो, श्री गुरुदेव के चरणारविन्द का पुजारी हो, शूर हो, योगाभ्यास में पूरी–पूरी लगन हो, इस साधक को अधिमात्र साधक कहते हैं। ऐसा साधक हठ योग का अधिकारी है। हठाभ्यासरत यह साधक जल्दी से जल्दी उन्नति को प्राप्त कर सकता है, इसके अतिरिक्त आगे जो लक्षण बतलाये जा रहे हैं। वह उत्तम अधिकारी के लक्षण हैं।

सब प्रकार से पूर्ण योगाधिकारी

महावीर्यान्वितोत्साही, मनोज्ञः शौर्यवानपि।
शास्त्रज्ञोऽभ्यास शीलश्च, निर्मोहश्च निराकुलः।।
नवयौवन संपन्नो मितहारी, जितेन्द्रियः।
निर्भयश्च शुचिर्दक्षो, दाता सर्वजनाश्रयः।।
अधिकारी स्थिरो धीमान्, यथेच्छावस्थितः क्षमी।
सुशीलो धर्मचारी च, गुप्तचेष्टः प्रियं वदः।।
शास्त्र विश्वास सम्पन्नो, देवता गुरु पूजकः।
जन संग विरक्तश्च, महाव्याधि विवर्जितः।।

... विरक्तश्च, महाव्याधि विवर्जितः।।
4 नवम्बर 2021 सिद्धयोग

अधिमात्र तरो ज्ञेयः, सर्व योगस्य साधकः।

त्रिभिस्संवत्सरै सिद्धि, रेतस्य नाम संशयः।।

सर्व योगाधिकारी स, नाम कार्य विचारणां।।

अर्थात् महावीर्यवान्, उत्साहयुक्त, स्वरूपवान्, सूरता सम्पन्न, शास्त्रज्ञ, अभ्यासशील, मोह से रहित, आकुलता रहित अर्थात् सावधान, नव यौवन सम्पन्न, मिताहारी, इन्द्रियों को वश में रखने वाला, निर्भय, पवित्र आचार वाला, चतुर, दानशील, शरणागत पालक, स्थिर चित्त बुद्धिमान, सन्तोषयुक्त क्षमावान, शीलवान, धार्मिक कर्मों को गोप्य रखने वाला, प्रिय सत्यवादी शास्त्र में विश्वास देवता और गुरुपूजक, जन संग रहित, महाव्याधि रहित, ऐसे गुण जिसमें हों वह सर्वयोग का साधक है। ऐसे साधक को तीन वर्ष में ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है, इसमें बिलकुल भी संशय नहीं है। यह साधक सर्व योग का अधिकारी है ऐसे साधक को श्री गुरुदेव जी समस्त योग का उपदेश कर देते हैं। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं रहनी है।

इस प्रकार से योग के विभिन्न अधिकारी साधकों का वर्णन शिव संहिता में भगवान् शिव ने किया। योग–दर्शन में भी अधिकार भेद भली प्रकार समझाया गया है। भगवान पतंजलि देव ने इस प्रकार के अधिकारियों को समझाने के लिए तीन सूत्रों का उल्लेख किया उनके विशेष व्याख्यान की इस लेख में आवश्यकता नहीं है, किन्तु फिर भी संकेत मात्र में मैं यहाँ लिख देना उचित समझता हूँ।

श्रद्धावीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

अर्थात् जो व्यक्ति श्रद्धा वीर्य के द्वारा स्मृति समाधि को पैदा करके प्रज्ञा पूर्वक आगे बढ़ता है उसका रास्ता अन्तराय रहित हो जाता है ऐसे व्यक्ति के भी तीन–तीन भेद हो जाते हैं। मृदु संवेग, मध्य संवेग, तीव्र संवेग। जिनके लिए भगवान् पतंजलि देव ने–

तीव्र संवेगानामासन्नः– कह करके तीव्र अधिकारियों के लिए जल्दी समाधि लाभ का फल लिखा है। हमारे पहले लेखों में प्राणायाम की परिभाषा और उसकी विधि का भली प्रकार वर्णन किया जा चुका है। किन्तु यह सब कुछ होने पर भी मनुष्य को अधिकार–भेद समझकर पग बढ़ाना बहुत ही आवश्यक है। कम से कम हठयोग का अधिकारी ही प्राणायाम में प्रवृत्त हो सकता है। यदि साधक अधिक मात्र तम योग का अधिकारी हो तो सर्वोत्कृष्ट है ही अन्यथा इस लेख में ऊपर हठयोग के अधिकारी के लक्षण बतलाये गये हैं उतना तो आवश्यक है ही। अतः प्राणायाम के साधक को अपने अधिकार को शास्त्रोक्त निश्चय करके उसमें प्रवृत्त होना चाहिए। अन्यथा मंत्र योग, राजयोग आदि का अभ्यास करना चाहिए जिससे पतन न हो।

सम्पादकीय–

भगवान कपिल का माता को योगोपदेश

आचार्य (डा०) रामलाल शर्मा

महर्षि कपिल सांख्य दर्शन के प्रणेता हैं। अपनी माता देवहुति को उन्होंने भक्ति एवं योग का उपदेश दिया, उसी का सार इस लेख में प्रस्तुत है:–

भगवान कपिल अपनी माता को उपदेश देते हुए कहते हैं।

माता जी ! अध्यात्म योग ही मनुष्य के आत्यन्तिक कल्याण का मुख्य साधन है जहाँ सुख और दु:ख की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है।

योग अध्यात्मिक: पुसां, मतो नि:श्रेयसाय मे।

अत्यन्तोपरत्तिर्यत्र दु:खस्य, च सुखस्य च।

जीव के बन्धन का और मोक्ष का कारण मन ही है। विषयों में आसक्त होने पर वह बन्धन का हेतु होता है, परमात्मा में अनुरक्त होने पर वह ही मोक्ष का कारण बन जाता है।

गुणेषु सक्तं बन्धाय, रतं वा पुंसि मुक्तये।

मैं, मेरापन तथा काम क्रोधादि से मुक्त होकर वैराग्य और भक्ति से युक्त हृदय से आत्मा को प्रकृति से परे, स्वयं प्रकाश, अखण्ड एवं उदासीन देखता है। योगियों के लिए भगवत् प्राप्ति के निमित्त सर्वात्मा श्री हरि के प्रति की हुई भक्ति के समान और कोई मंगलमय मार्ग नहीं है विवेकी–जन संग (आसक्ति) को ही आत्मा का अच्छेध्य बन्धन मानते हैं। किन्तु वही संग जब महापुरुषों के साथ हो जाता है तो मोक्ष का द्वार खुल जाता है।

प्रसङ्ग मजरं पाशमात्मान:, कवयो विदु:।

स एव साधुषु कृतो, मोक्षद्वारमपावृतम्।।

जो व्यक्ति दयाशील, सहनशील तथा ' सर्व भूतहिते रता ' हैं। मेरे लिए जिन्होंने सब सगे सम्बन्धि त्याग दिया है, मेरे परायण हो कर मेरी पवित्र कथाओं का श्रवण कीर्तन करते हैं उन्हें तरह–तरह के ताप (त्रयताप) नहीं सताते।

इसलिए देवी ! महापुरुषों का संग ही इच्छा करने के योग्य है; क्योंकि वे आसक्ति उत्पन्न सभी दोषों को हर लेने वाले हैं। इस प्रकार मनोनिग्रह का यत्न करता हुआ लौकिक एवं पारलौकिक सुखों में वैराग्य हो जाने पर मनुष्य सावधानता पूर्वक शब्दादि विषयों त्याग कर, वैराग्य युक्त ज्ञान एवं योग से मेरे प्रति की हुई सुदृढ़ भक्ति से युक्त परमात्मा को इस देह में ही पा जाता है।

माता जी ! जो लोग इहलोक, परलोक में साथ जाने वाली वासनामय लिङ्ग देह (सूक्ष्म–शरीर) को तथा शरीर सम्बन्ध रखने वाली धन, पशु, गृह आदि हैं, उन्हें त्यागकर अनन्य भक्ति से सब प्रकार से मेरा भजन करते हैं उन्हें मैं संसार–सागर से पार कर देता हूँ। मैं

साक्षात् आत्मा हूँ। प्रकृति और पुरुष का भी प्रभु हूँ, तथा समस्त प्राणियों की आत्मा हूँ मेरे भय से वायु चलती है, सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करता है, अग्नि जलती है।

योगीजन ज्ञान वैराग्य युक्त मन से योग के द्वारा शान्ति प्राप्त करने के लिए मेरे निर्भय चरणों का आश्रय ग्रहण करते हैं।

माता जी ! आत्म–दर्शन रू‍प ज्ञान ही पुरुष के मोक्ष का कारण है और इसी ज्ञान से उस की अहंकार रूप हृदय ग्रन्थि (अविद्याग्रन्थि) का भेदन करने वाला है। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए, कि कुपथगामी (विषय चिन्तन) में लगे हुए चित्त को तीव्र भक्ति योग एवं वैराग्य के द्वारा धीरे–धीरे वश में करे।

देवी ! अब मैं अष्टाङ्ग योग की विधि का वर्णन करता हूँ। यमादि योग साधनों के द्वारा श्रद्धा पूर्वक अभ्यास द्वारा चित्त को बार–बार एकाग्र करते हुए, मुझमें सच्चा भाव रखना, समस्त प्राणी से समभाव, आसक्ति का त्याग, मौन व्रत, प्रारब्धानुसार जो मिल जाए उसी में सन्तुष्ट रहता है परिमित भोजन करता है, एकान्त रहता है, सब का मित्र है दयालु तथा धैर्यवान है, प्रकृति एव पुरुष के वास्तविक स्वरूप को अनुभव करके, तत्व ज्ञान के द्वारा मैं, मेरेपन का अभिनिवेश नहीं करता है। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं देखता है। वह आत्मदर्शी मुनि नेत्रों से सूर्य को देखने के समान अपने शुद्ध अन्तःकरण द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर शुद्ध ब्रह्म को पा जाता है।

भगवान कपिल आगे कहते हैं– शास्त्र विरुद्ध आचरण का त्याग, आत्म ज्ञानियों के चरणों की सेवा करना, संसार–बन्धन से छुड़ाने वाले धर्मों में प्रेम करना, पवित्र एवं परिमित भोजन करना, एकान्त व निर्जन स्थान में रहना, यम–नियमों का पूरा पालन करते हुऐ स्थिर पूर्वक बैठना, धीरे–धीरे प्राणायाम द्वारा श्वास को जीतना, इन्द्रियों को मन के द्वारा विषयों से हटाकर हृदय में ले जाना। मूलाधार आदि किसी केन्द्र में मन सहित प्राण को स्थिर करना। जिस प्रकार वायु और अग्नि से तपाया हुआ सोना अपने मल को त्याग देता है उसी प्रकार जो योगी प्राणवायु को जीत लेता है उसका मन बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है। अतः योगी को चाहिए कि प्राणायाम से कफ , पित्तादि दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों के सम्बन्ध को और ध्यान से भगवद् विमुख करने वाली राग–द्वेषादि दुर्गुणों को दूर करे।

प्राणायाम देहद्योषान्, धारणाभिश्च किल्विषान्।
प्रत्याहारेण संसर्गान्, ध्यानेनानीश्वरान् गुणान।।

तत्पश्चात् भगवान के हर अंग का एकाग्र चित्त होकर ध्यान करना चाहिए। माता जी ! अब मैं तुम्हें अपने तीन प्रकार के भक्तों को बतलाता हूँ।

जो भेददर्शी क्रोधी पुरुष हृदय में हिंसा, दम्भ तथा मात्सर्य का भाव रखकर मुझ से प्रेम करता है वह मेरा तामस भक्त है। जो पुरुष विषय यश और ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में मेरा भेदभाव से पूजन करता है वह मेरा राजस भक्त है। पूजन करना कर्त्तव्य है इस बुद्धि से जो पूजन करता है वह मेरा सात्विक भक्त है। माता जी ! मैं सभी जीवो में आत्मा रूप से स्थित हूँ। इसलिए जो लोग मुक्त सर्वभूत स्थित परमात्मा का अनादर करके केवल प्रतिमा से ही मेरा पूजन करते हैं उनकी वह पूजा स्वांगमात्र है। जो भेददर्शी और अभिमानी पुरुष दूसरे जीवों के साथ बैर

बाँधता है वह शरीर में विद्यमान धुक्त आत्मा से ही द्वेष करता है। उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। जो व्यक्ति दूसरे का अपमान करता है वह बहुत बढ़िया-बढ़िया सामग्री से भी मेरा पूजन करे तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं होता हूँ। इसलिए जब तक सम्पूर्ण प्राणी में स्थित मुझ परमात्मा का अनुभव न हो जाये तब तक मुझ ईश्वर की प्रतिमादि में ही पूजन करे।

माता जी! पाषादि अचेतनों की अपेक्षा वृक्षादि श्रेष्ठ है उन से भी मन वाले प्राणी उत्तम है तथा उन से भी इन्द्रियों की वृत्ति से युक्त प्राणी श्रेष्ठ है। उनसे स्पर्श का अनुभव करने वाले,तथा उन से भी रस का अनुभव करने वाले मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं। मत्स्यादि से गन्ध का अनुभव करने वाले तथा उन से भी शब्द को ग्रहण करने वाले श्रेष्ठ हैं। उन से ऊपर नीचे दोनों ओर दांत वाले श्रेष्ठ है। बिना पैर वाले जीव से अनेक पैर वाले, तथा उनसे भी चार-चरण वाले, तथा चार चरण वालों से भी दो चरण वाले मनुष्य श्रेष्ठ है। उन में भी अपने सम्पूर्ण कर्म फल तथा अपने शरीर को भी मुझ में अर्पण करके भेदभाव छोड़कर मेरी उपासना करते है वे श्रेष्ठ हैं। माता जी! इस प्रकार मैंने योग एवं भक्ति का उपदेश किया है। इन में से एक का भी साधन कर लेने पर जीव मुझ सच्चिदानन्द परमात्मा को अवश्य ही पा जाता है।

अजरामरवत प्राज्ञः विद्याम् अर्थं च चिन्तयेत्।
ग्रहीत इव केशषु मृत्युना धर्म आचरेत्।।

विद्या और विभव की खोज में अपने को जरा-मरण से मुक्त समझकर आचरण करो और धर्माचरण में अपनी शिखा काल के हाथों में समझकर तत्पर हो।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नम:

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

नवासीवें अध्याय में श्री शुकदेव जी ने परीक्षित को एक और कथा सुनायी है। इसमें अर्जुन की वीरता एवं योगा स्थिति के साथ उसके अहं का दहन भगवान ने बड़े अद्भुत ढंग से किया है।

द्वारिका में उन दिनों अर्जुन भी आये हुये थे। एक दिन एक ब्राह्मण अपने बालक का मृत शरीर लेकर राज महल के द्वार पर आया और वहाँ रखकर अत्यन्त दु:खी होकर विलाप करता हुआ कहने लगा। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं, धूर्त, कृपण और विषयी राजा के कर्म दोष से मेरे बालकों की मृत्यु होती आ रही है। यह उसका नवाँ बालक मर गया था। उस समय श्रीकृष्ण के पास अर्जुन भी बैठे हुये थे। उन्होंने ब्राह्मण से कहा– भगवन्! मैं समझता हूँ आप स्त्री-पुरुष अपने बालकों के मृत्यु से दीन हो रहे हैं। मैं आपकी संतान की रक्षा करूँगा। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका, तो आग में कूदकर जल मरूँगा।

ब्राह्मण ने कहा– इन जगदीश्वरों के लिए जब यह काम कठिन रहा तो तुम कैसे कर सकोगे? यह प्रतिज्ञा तुम्हारी मूर्खता है।

अर्जुन ने कहा– ब्रह्मन! मैं बलराम, श्रीकृष्ण अथवा प्रद्युम्न नहीं हूँ। मैं गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हूँ। मैं अपने पराक्रम से भगवान शंकर को संतुष्ट कर चुका हूँ। मैं साक्षात् मृत्यु को भी जीत कर आपकी संतान ला दूँगा। ब्राह्मण प्रसन्न हो घर लौट गया। जब प्रसव का समय आया तब बड़ी आतुरता से अर्जुन के पास आया और बोला– " इस बार बच्चे को मृत्यु से बचालो "।

अर्जुन भगवान शंकर को नमस्कार कर दिव्य अस्त्रों का स्मरण किया तथा सूतिका गृह को अभिमंत्रित वाणों से एक पिजड़े के रूप में घेर दिया। इसके पश्चात् ब्राह्मणी को एक शिशु पैदा हुआ, जो बार-बार रो रहा था। परन्तु देखते ही देखते वह शिशु सशरीर आकाश में अन्तर्धान हो गया।

न्यरुणत् सूतिकागारं शरैर्नानास्त्रयोजितै:।
तिर्यगूर्ध्वमध: पार्थश्चकार शरपञ्जरम्।। 38।।

–अ. 89 स्कं. 10

ब्राह्मण ने श्री कृष्ण के सामने ही अर्जुन की निन्दा करने लगा। मेरी मूर्खता तो देखो, मैंने इस नपुंसक की बातों पर विश्वास कर लिया। ब्राह्मण ने न कहने योग्य तिरस्कार युक्त वचन अर्जुन को सुनाये।

तब अर्जुन योगबल से तत्काल संयमनीपुरी गये। वहाँ यमराज के यहाँ बालक नहीं मिला। वे शस्त्र लेकर इन्द्र, अग्नि, सोम, वायु और वरुण आदि आताल-पाताल स्वर्ग से ऊपर

महर्लोकादि में गये। परन्तु ब्राह्मण बालक नहीं मिले।

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः।
ययौ संयमनीमाशु यत्रास्ते भगवान यमः।। 43।।

अन्ततः निराश–हताश अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने हेतु अग्नि में प्रवेश करना चाहा। तब भगवान श्रीकृष्ण उन्हें रोकते हुये बोले–भाई अर्जुन ! मैं तुम्हें ब्राह्मण बालक सब अभी दिखाये देता हूँ।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन सहित अपने दिव्य रथ पर सवार होकर पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया। उन्होंने लोकालोक पर्वत को लाँघकर घोर अन्धकार में प्रवेश किये। अन्धकार इतना घोर था कि घोड़े इधर–उधर भटकने लगे तब सहस्त्र सूर्यों के समान तेजस्वी चक्र को आगे चलने की आज्ञा दी। इस प्रकार सुदर्शन चक्र द्वारा दिखाये मार्ग से रथ अन्धकार की अन्तिम सीमा पर पहुँचा। वहाँ परम ज्योति जगमगा रही थी। अर्जुन की आँखें चौंधिया गई। इसके बाद रथ दिव्य जलरासि में प्रवेश किया। वहाँ एक बड़ा सुन्दर महल था। उसमें स्वेत वर्ण वाले शेष जी विराजमान थे, जिनकी शय्या पर परुषोत्तम भगवान विराज रहे थे। उनका शरीर कांति युक्त श्यामल है। बड़े–बड़े नेत्र बहुत सुहावने हैं। लम्बी–लम्बी आठ भुजायें, गले में कोस्तुभ मणि है। वे पार्षदों द्वारा सेवित हो रहे हैं। भगवान श्री कृष्ण ने अपने ही स्वरूप भगवान को प्रणाम किया। अर्जुन थोड़े भयभीत हो गये थे। वे भी भगवान कृष्ण के पश्चात प्रणाम किया। अब भूमापुरुष ने मुस्कुराते हुये मधुर वाणी से कहा– श्रीकृष्ण और अर्जुन मैं तुम दोनों को देखने के लिए ही ब्राह्मण के बालक मँगा लिए हैं। तुम दोनों ने धर्म की रक्षा के लिये मेरी कलाओं के साथ पृथ्वी पर अवतार ग्रहण किया है। पृथ्वी को भार मुक्त कर शीघ्र से शीघ्र तुम लोग फिर मेरे पास लौट आओ। तुम दोनों ऋषिवर नर और नारायण हो। यद्यपि तुम पूर्णकाम हो, फिर भी जगत् की स्थिति और लोक संग्रह के लिये धर्म का आचरण करो।

पूर्णकामावपि युवां नरनारायणा वृषी।
धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोक संग्रहम्।। 60।।

–अ.89 स्कं.10

जब भगवान भूमा पुरुष ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को आदेश दिया, तब उन लोगों ने स्वीकार करके उन्हें नमस्कार किया और ब्राह्मण–बालकों को लेकर द्वारिका लौटे। अर्जुन ने उन बालकों को उनके पिता को सौंप दिया।

अब नब्बेवें अध्याय में भगवान कृष्ण के लीला–विहार का वर्णन किया गया है। भगवान श्री कृष्ण सोलह हजार से भी अधिक पत्नियों के एकमात्र प्राणवल्लभ थे। उन पत्नियों के अलग–अलग महल भी ऐश्वर्य से सम्पन्न थे। जितनी पत्नियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके वे उनके साथ विहार करते थे।

रेमे षोडशसाहस्त्रपत्निनामेकवल्लभः।
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु।। 5।।

भगवान श्री कृष्ण का काय निर्माण रूपी योगैश्वर्य का ही पुन: वर्णन यहाँ किया गया है। दूसरी बात, रानियों की चित्तवृत्ति भगवान की ओर खिंची रहती। उन्हें और किसी बात का स्मरण ही न होता। वे योगेश्वरेश्वर भगवान श्रीकृष्ण में ऐसा ही अनन्य प्रेम भाव रखती थीं। इसी से उन्होंने परमपद प्राप्त किया।

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे।
क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम्।। 25।।

अ.90 स्कं.10

जिन स्त्रियों ने जगदगुरु श्रीकृष्ण को अपना पति मानकर परम प्रेम से उनकी सेवा की, उनकी तपस्या का वर्णन भला कैसे किया जा सकता है। भगवान श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाले भक्त और द्वेष करने वाले शत्रु दोनों ही उनके स्वरूप को प्राप्त हुये। श्रीशुकदेव जी कहते हैं–परीक्षित! भगवान श्री कृष्ण की कथाओं का अधिकाधिक श्रवण, कीर्तन और चिन्तन करने से जो भक्ति उत्पन्न होती है, वह भगवान के परमधाम में पहुँचा देती है। जहाँ काल की दाल नहीं गलती। इसलिए मनुष्य को उनकी लीला कथा का ही श्रवण करना चाहिए।

अविश्वास ठीक नहीं

आपके पास जो कुछ भी हो, वह बिना किसी हिचकिचाहट के दे डालिये। भोगने के लिए दु:ख के सिवाय और कुछ नहीं होगा। अन्यथा प्रकृति आप से जबरदस्ती छीन लेगी। प्रतिदान की आकांक्षा मत रखिये अन्यथा आनन्द से वंचित हो जाओगे। प्रतिदिन की वासना से प्रकृति के प्रति अविश्वास ही तो प्रतीत होता है। अविश्वास नि:संदेह व्याकुलता और अधैर्य का जन्मदाता है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

प्रश्नोपनिषद् एक परिचय

आध्यात्म परिचर्चा

पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

मनुष्य एक मननशील, चैतन्य, सजग और जागरुक जीव है। संसार में रहकर जीवन यापन करने के लिए वेद, पुराण उपनिषद, गीता, रामायण, मानस जीव के मार्ग दर्शक रहे है। सद्गुरु उसके पथ का परम प्रकाश रूप रहा है। जब तब गुरु की कृपा नही होती तब तक सद्वृत्ति बनती ही नही है। इसलिए माता–पिता भी भौतिक गुरु ही हैं। तुलसी दास जी ने लिखा– **" गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई "**। संसार के आवागमन से मुक्त कराने वाले सद्गुरु के अलावा और कोई हो ही नही सकता है। इसीलिए कबीर ने कहा है कि गुरु कुम्हार शिष कुम्भ, गढ़गढ़ काढ़े खोट/अन्तर हाथ सम्हारि दे बाहर बाहै चोट। ऐसे ही प्रश्नोपनिषद में गुरु महर्षि पिप्लादि है। प्रश्नोपनिषद में गुरु द्वारा जीव की एक लम्बी चर्चा प्रश्नों के माध्यम से किया गया है। प्रश्नकर्त्ता भी सामान्य नहीं ऋषि थे अपनी जिज्ञासा की शान्ति तथा लोक कल्याण के लिए छः ऋषि आपस में विचार विमर्श के बाद जिज्ञासु भाव से महर्षि पिप्पल के आश्रम में आये और अपनी जिज्ञासा प्रकट किये। ये छः ऋषि सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणी, आश्वलायन, भार्गव कबन्धी। ये परमतपस्वी, वेदाभ्यास के परायण और ब्रह्मनिष्ठ श्रद्धापूर्वक वेद के अनुकूल आचरण करने वाले थे। महर्षि के आश्रम पर पधार कर अपनी जिज्ञासा प्रकट किये। तो सद्गुरु ने कहा– ऋषियों तुम लोग तपस्वी, ब्रह्मचर्य व्रत के पालक हो। वेदों का भी खूब स्वाध्याय किया है। किन्तु तुम्हें हमारे आश्रम में रहकर पुनः एक बार एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक तपस्या करनी होगी। तब तुम प्रश्न कर सकते हो। मेरे साधक भाइयों विचार करें। अर्जुन भी भगवान को जानना चाहा तो तुरन्त दिव्य ज्ञान चक्षु दिया। ऐसे अनेकों प्रसंग मन में मेरे उठ रहा है। धन्य हो सद्गुरु (प्रभुअनन्त योगेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज) हम साधकों को कहते रहे समुद्र पीकर भी होठ सूखे रहे। अर्थात् साधन करो उस साधन रूपी पूँजी को सम्हाल कर रखो। जिज्ञासा बनाते रहो। अग्नि प्रज्वलित कर दिया उसे आगे बढ़ाओं। किन्तु क्षीण वृत्ति कलियुगी सद्गुरु के शब्द पर आधा अधूरा ध्यान अथवा ध्यान गया ही नहीं। आजकल के चक्कर में साधक फँसा रहा। आज जब उन ऋषियों के बारे में महर्षि पिप्पलाद के उपदेश कि अभी एक वर्ष साधन करो। साधन भी यहीं आश्रम में रहकर करना है। तब समझ में आया धन्य हो सद्गुरु सत्ता। प्रभो आप खोजकर जगत के जीवों का उद्धार करते हो। ऐसी कथा सद्गुरु देव के मुख से दादा गुरु के बारे में कई बार सुनने को मिलती रहीं। जो आज प्रेरक के रुप में शायद बने। बहरहाल मेरे साधक भाइयों अब अपने मन को इधर लाये। महर्षि ने कहा – तुम्हारे पूछे गये प्रश्नों का ज्ञान होगा तो भलीभाँति समझाऊँगा। गुरु की वाणी वस्तुतः उनकी कृपा बिना समझ में नहीं आ सकती है। तुलसीदास जी ने कहा –

" सोइजानेहु जेहि देहि जनाई "

अर्थात् उस साधक को पात्र होना चाहिए। जिज्ञासु होना चाहिए। हम सबमें जिज्ञासा भी नहीं उठती। यदि उठती तो भावी कष्ट कारक कर्म के कारण डर वस शान्त हो जाती है। उठे भी तो कैसे जब हमारी इतनी पात्रता ही नहीं है। जहाँ तक मेरी समझ पात्रता के बारे में है कि जीव अनेकों जन्म के पाप पुण्य के संचित कर्म को लेकर जन्म लेता है। जन्म देने वाला न तो उसमें बढ़ा सकता न तो घटा सकता है। हाँ, सद्गुरु कृपा अवश्य ही अदृश्य रूप में हो जाती है। जिसको हम जीव समझ नही पाते तथा कर्त्तापन के अहंकार में भी आ जाते हैं। यद्यपि सद्गुरु तमाम अन्तर्कथा रूपी हाजमे की गोली (उपदेश) देकर पाचन क्षमता को भी देखकर देते हैं। इसलिए देते कि अपच न हो आए। जिससे यह कलियुगी जीव बकबक वाला बाबा न बन जाए। हे सद्गुरु आप पर तो न्योछावर की सी वृत्ति बनती लेकिन डर से अपने आप शान्त हो जाती है। इसलिए गीता के बारे में भगवान ने कहा है कि–

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।

(18/67)

यं इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयं।।

(18/68)

भगवान ने कहा– यह (अमृतमयी) रहस्य से भरा हुआ उपदेश किसी भी काल में किसी तप रहित मनुष्य, न भक्ति रहित मनुष्य (जो वेदशास्त्र, परमेश्वर, तथा महात्मा और गुरुजनों में आदर न रखता हो) न बिना सुनने की इच्छा वाले, न तो जो मुझमें दोष दृष्टि रखता है। ऐसे लोगों से नही कहना चाहिए। किन्तु आगे के श्लोक में भगवान ने कहा– कि जो पुरुष मुझ में प्रेम रखकर इस रहस्य से युक्त गीता रूपी शास्त्र को मेरे भक्त से कहेगा। वह मुझ को ही प्राप्त हो जायेगा। इसका तात्पर्य जीव (साधक) को बैठ कर साधकों के बीच सत्संग की आवश्यकता है। इन श्लोकों का परिणाम बताते हुए कहा–पृथ्वी पर उससे बढ़कर मेरा प्रिय करने वाला मनुष्य न है और न होगा। धन्य हो सद्गुरु समान योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जो अर्जुन को सही पात्र बनाकर शिष्यत्व स्वीकार कराया।

ऋषियों ने सद्गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर एक वर्ष तक उसी प्रकार तप किया जैसी गुरुदेव की आज्ञा थी। अतत: वह वेला आ गया जब वे अपने सद्गुरु महर्षि पिप्पल के पास गये। तब सद्गुरु ने मुस्कराते हुए उनको अत्यन्त तितिक्षु जिज्ञासु जानकर कहा– ऋषियों तुम अब प्रश्न करने के योग्य हो गये हो। अब प्रश्न करो। सत्संग का वह अवसर आ गया। जब जीव के कल्याण के लिए ऋषियों ने शब्द रूपी मथानी से सत्संग रूपी रही को मथना शुरू किया, तो जीव के कल्याण रूपी मक्खन निकलने लगा। जिसे खा पीकर जीव सद्मार्ग पर अग्रसर होगा। सद्गुरु (योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) की वह वाणी याद आ रही है। जब उन्होंने कहा कि– गुरु की परीक्षा कर लो और इतनी साधना करो कि पिछला जन्म और अगला मृत्यु तुम्हें ज्ञात हो जाए। यही शायद सद्गुरु के परीक्षा का संकेत रहा साधकों के लिए सिद्ध गुफा के

साधक तो स्पर्शमात्र से कृतार्थ हो जाते थे। वही जो सद्गुरु के उपदेशानुसार साधन किया वह तो आध्यात्मिक स्तर पर समझ गया। जो कम समझा तो साधन के स्तर पर नहीं लेकिन भौतिक स्तर पर हजार पति, लखपति और आगे का पति तो जरूर बन गया। किन्तु ऐसे साधक को खोजना आसान नहीं है। क्योंकि साधक की वृत्ति उसी स्तर की होनी चाहिए। तब ही साक्षात्कार होगा। अल्पज्ञानी साधक बहक जाते है। ऐसे में लेख में बहके हुए विषय को सुधीसाधक अल्पमति मानकर समझ लेगें, यह प्रभु कृपा होगी। क्योंकि मायावी जीव जल्द बहक जाता है। सिद्धयोग के साधकों को अल्पमति के अनुसार पचे हुए विषय जो सद्गुरु की कृपा का परिणाम है। कुछ लेख, प्रश्नोपनिषद से लेखनी के रूप में क्रमशः चलती रहेगी। आप और हम सत्संग का पान करते रहेंगे। ऐसी प्रभु से याचना है। लेख को सद्गुरु रूपी कृपा पाचन के रूप में सहायक हो। ऐसी याचना सद्गुरु से है। क्योंकि प्रेरक वही अनादि नाथ सद्गुरु ही है।

श्री प्रभुचरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह
बलिया (उ.प्र.)

सदाशिव प्रभुरामलाल, श्री चन्द्रमोहन घनश्याम,
गुरु पूनम पर अर्पित हो, मेरा कोटि–कोटि प्रणाम।

1. तेरी महिमा अजब निराली, पार नहीं कोई पाया है,
रात दिन के चक्कर में, कुछ लेकर कुछ गंवाया है,
कोई दर्द दे इतराता है, कुछ प्रभु के करते काम,
गुरु पूनम.......

2. कोई फूलों पर भी सो न सके, कोई कांटो पर भी हसता है,
महगी होती मौत कहीं तो, जीवन सस्ता होता है,
हम सुख देखें हैं सड़कों पर, महलों में कोहराम,
गुरु पूनम.......

3. कितने राजा आये गये, न तख्त रहा न ताज रहा,
पल में दुनिया बदल रही, कल वाला न आज रहा,
सुबह को सूरज पर्वत पर, और सागर में शाम,
गुरु पूनम.......

4. दोनों दृश्य तुम दिखा दिये, जीवन के इन राहों में,
कृपा करो हमें लेलो अब, भगवन अपनी बांहो में,
राजेश पाप करें मस्ती में, प्रभु होते बदनाम,
गुरु पूनम.......

अद्भुत गुरु-भक्त- " गंगाधरण "

अन्तु राम यादव

हमारे आप के प्राणाधार, प्रातः स्मरणीय सद्गुरुदेव भगवान अपने प्रवचनों में प्रायः एक निष्ठ साधना एवं एक तत्वाभ्यास के बारे में उपदेश दिया करते थे। वैसे भी कहा जाता है कि " **प्रतिष्ठा सबमें किन्तु निष्ठा एक में ही होनी चाहिए।** " इसी सन्दर्भ में गुरु गीता का एक छोटा सा प्रकरण प्रस्तुत है।

एक बार माँ भगवती पार्वती ने भगवान शंकर से पूछा– हे परात्पर जगत् गुरु! हे सदाशिव! हे महादेव! वह कौन सा मार्ग है जिस पर चल कर जीव ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ? इसी प्रश्न से भगवान शंकर के मुखारविन्द से एक महान ग्रंथ " **गुरु गीता** " का प्रादुर्भाव हुआ। गुरु गीता, गुरु भक्ति का एक अनूठा ग्रंथ है। गुरु गीता भगवान शंकर की अमृत वाणी है। गुरु गीता के महामंत्र साधकों का पग -पग पर मार्ग दर्शन करते हैं। साधना की सुगम, सरल विधियाँ सुझाते हैं। साधकों को इस गुप्त तत्व का बोध कराते हैं कि तुम इधर उधर क्यों भटक रहे हो? व्यर्थ में क्यो परेशान हो? परम् कृपालु सद्गुरु के होते हुए तुम्हें किसी भी तरह से भटकने अथवा परेशान होने की जरूरत नहीं है। सद्गुरु के प्रति भावभरा समर्पण सभी भव रोगों की अचूक दवा है। समस्यायें भौतिक हों या आध्यात्मिक, लौकिक हों या अलौकिक गुरु चरणों में सभी के सारे समाधान समाये हैं। गुरु गीता हमें बताती है कि गुरु चरणों की कृपा से गुरु भक्त साधक को साधना का परम लक्ष्य सहज ही प्राप्त हो जाता है।

भगवती पार्वती के उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में भगवान शंकर कहते हैं– हे महादेवी! सद्गुरु के सिवाय अन्य कोई ब्रह्म नही है अर्थात् कोई अन्य उच्चतम् तत्व नहीं है। गुरु चरणों की अनन्य भक्ति से जीव " **अयम् आत्मा ब्रह्म** ", " **सोऽहम्** " के दुर्लभ बोध को सुगमता से पा लेता है। भगवान शिव के इस कथन का आशय यह है कि जब सच्चा शिष्य, गुरु के साथ अनन्यता, एकात्मता और तादम्यता प्राप्त कर लेता है तब उनके शरीर अलग–अलग दिखते भर हैं। गुरु–शिष्य की अन्तर्चेतना आपस में घुली–मिली होती है। शिष्य में सद्गुरु की चेतना प्रकाशित होती है। इस प्रकार सच्चा शिष्य यानी जीव, सद्गुरु यानी ब्रह्म का ही स्वरूप हो जाता है। भगवान शिव के कथन का अन्तिम सत्य यह है कि अनन्य गुरु भक्ति ही वह मार्ग है जिस पर चल कर जीव ब्रह्म स्वरूप अथवा ब्रह्ममय हो जाता है । सामान्य जनों को भले ही कुछ अतिशयोक्ति लगे किन्तु जो साधक इस पर मनन और निदिध्यासन करेंगे उन्हें सत्य की किरणें अवश्य फूटती अनुभव होंगी ।

इस तथ्य को सुस्पष्ट रूप से समझने के लिए एक गुरु भक्त साधक की अनुभूति कथा प्रस्तुत की जा रही है। यह अनुभूति कथा सम्पूर्णतया सत्य है। यह सत्य घटना श्री अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी के श्रेष्ठ साधक " गंगाधरण " के बारे में है। इस समय उनका पार्थिव शरीर

सद्गुरु चरणों में विलीन हो चुका है। उन्होंने अपने साधनामय जीवन का रहस्य बताते हुए कहा है कि सर्वाधिक फलदायी साधना अपने सद्गुरु के चरणों का चिन्तन और ध्यान है। उन्होंने अपने बारे में जो कुछ बताया है, उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है–

जब मैं पाण्डिचेरी आश्रम महर्षि अरविन्द के पास आया, उस समय मेरी उम्र 17 वर्ष थी। पढ़ा–लिखा कुछ खास नहीं था, सामान्य तमिल बोल लेता था। श्री अरविन्द से पहली बार मिलने पर उन्होंने मुझसे पूछा– तुम यहा क्यों आये हो ? और क्या चाहते हो? उनके इन सवालों के जवाब में मैंने कहा– प्रभु ! मैं नहीं जानता कि मैं यहाँ क्यों आया हूँ और मैं यह भी नहीं जानता कि मैं क्या चाहता हूँ? वैसे तो मैं काफी गरीब हूँ, पर मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मैं यहाँ केवल रोटी खाने के लिए नहीं आया हूँ।

इस सरल एवं स्वाभाविक उत्तर पर श्री अरविन्द बहुत प्रसन्न हुए। सद्गुरु की प्रसन्नता से ही शिष्य पर कृपा की वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। महर्षि अरविन्द ने माता जी से कहा यह लड़का योग के लिए बिल्कुल तैयार है। इसके बाद मुझे आश्रम के कामों में लगा दिया गया। मुझे नाली साफ करना, गौशाला की सफाई करना जैसे साधारण काम करने पड़ते थे। मुझे दिये गये काम तो अति साधारण थे, पर मैं श्री अरविन्द के चरणों का चिन्तन करते हुए पूरे मनोयोग एवं भक्ति के साथ करता था। काम के प्रति मेरा यही भाव रहता था कि मैं आश्रम के साधारण काम नहीं ; बल्कि अपने सद्गुरु की व्यक्तिगत सेवा कर रहा हूँ।

यह कार्य करते दिन–महीनें और साल बीतते गये। एक बार जन्म दिवस के अवसर माता जी ने मुझसे पूछा– बोल, तुझे जन्म–दिन के अवसर पर क्या चाहिए ? उत्तर में मैंने बड़ी विनम्रता से कहा– माँ ! यदि आप कुछ देना चाहती हैं तो मुझे आप अपनी और श्री अरविन्द जी की चरण–रज एवं आप दोनो का चरण जल दे दीजिए। इस भक्ति पूर्ण आग्रह को माता जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। फिर तो हर वर्ष जन्म दिन के अवसर पर यह क्रम बन गया। बाद में चरण रज को सामान्य धूलि में मिलाकर और चरण जल को गंगा जल में मिलाकर रखने की मेरी आदत बन गई। कुछ वर्षों के बाद महर्षि अरविन्द जी ने शरीर छोड़ दिया। माता जी भी नहीं रहीं ; परन्तु मेरे पास उनकी चरण रज एवं चरण–जल विद्यमान था।

अपनी पूजा की चौकी पर मैं इन दोनों दुर्लभ वस्तुओं को रखता था। इन्हीं के पास पूजा वेदी पर श्री अरविन्द के महान ग्रंथ भी सजा कर रखे थे। श्री अरविन्द एवं माँ के महानिर्वाण के बाद इन दिव्य वस्तुओं की पूजा मेरे जीवन का आधार बन गई। पढ़ा–लिखा न होने के कारण करता भी क्या ? ग्रन्थों को समझने लायक मेरी बुद्धि तो थी नहीं। सद्गुरु चरण –रज एवं सद्गुरु चरण–जल की पूजा ही मेरा नित्य का कर्म था। साथ ही आश्रम के कामों को भी गुरु भक्ति समझ कर करता था।

एक दिन अपने सद्गुरु के बारे में सोचते हुए मेरा हृदय भर आया। मैं सोचने लगा कि 17 (सत्रह) वर्ष की उम्र में मैं इस आश्रम में आया था। और इस समय 87 (सत्तासी) वर्ष की उम्र होने जा रही है। आश्रम की सेवा करते 70 (सत्तर) वर्ष व्यतीत हो गये , परन्तु अभी तक कोई विशेष अनुभूति नहीं हुई। यह सोचकर मैं पूजा–स्थली पर गुरु–चरण–रज एवं गुरु चरण–जल की पूजा करते हुए प्रार्थना करने लगा– हे अन्तर्यामी गुरुदेव ! हे जगन्माता ! मैं तो आप का अज्ञानी बालक हूँ, पढ़ना लिखना भी ढंग से नहीं जानता। जो आप ने अपना दिव्य ज्ञान लिखा

है, उसे मैं पढ़ भी नहीं सकता। हे सर्व समर्थ प्रभु ! मुझे तो सिर्फ आप की कृपा का भरोसा है, यह मेरी भावभरी प्रार्थना अनवरत चलती रही। आँखों से आँसू झर–झर झरते रहे। पता नहीं कितनी देर तक यह क्रम चला। मुझे होश तब आया, जब स्वयं श्री अरविन्द जी एवं माता जी साक्षात् अपने अतिमानसिक शरीर से मेरे समक्ष उपस्थित हुए। उनके दिव्य प्रकाश से कण–कण आलोकित हो उठा। मेरे सद्गुरु ने मेरे ऊपर अपार कृपा करके मुझे दिव्य वह खजाना प्रदान किया जो अच्छे–अच्छों को अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसी सत्य अनुभूति हुई कि सद्गुरु की कृपा चेतना में मेरी आत्म चेतना है। दोनों की एकात्मता का स्पष्ट बोध हुआ और ऐसा प्रतीत हुआ जैसे हम दोनों में कोई भिन्नता है ही नहीं। यही है– जीव का ब्रह्ममय होना। मैं कृत–कृत्य हो गया। यह है – एकनिष्ठ गुरुभक्ति का फल। यह सत्य कथा हमारे आप के जीवन की भी सत्य कथा बन सकती है क्यों कि सद्गुरु चरणों की महिमा ही कुछ ऐसी है। सद्गुरु चरणों में बार–बार नमन करते हुए निम्न पंक्तियों के साथ इस लेख को विश्राम दिया जा रहा है–

" नजर जिधर-जिधर जाए उधर तू ही नजर आये "

मेरी तरफ से सभी भाई–बहनों को सादर जय गुरुदेव।

जिस व्यक्ति को इस बात का भान हो जाता है कि सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला परमेश्वर मुझ में वास करता है, तब उसकी समस्त कामनायें नष्ट हो जाती हैं जब उसे ज्ञात हो जाता है कि वह मैं ही हूँ जो सब कामनाओं को तृप्त करता है, तब उसके जीवन में अशान्ति नहीं रहती। उसे शाश्वत् शान्ति, अखण्ड शान्ति, परम शान्ति का लाभ होता है। परमात्मा और अपनी आत्मा के अद्वैत का ज्ञान प्राप्त हुए बिना शान्ति उपलब्ध होना सर्वथा असंभव है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

मन रूपी दर्पण

श्रीमती सरिता भारद्वाज

मन एक दर्पण के समान है। दर्पण का काम है वस्तु के स्वरूप का यथार्थ बोध करा देना। दर्पण शब्द बहुत सार्थक है। जो दर्प अर्थात् घमण्ड को न रहने दे वह दर्पण होता है। महाराजा दशरथ विषय भोगों और राज सत्ता के रागरंग में अपनी असलियत को भूले हुए थे। एक दिन उन्होंने हाथ में दर्पण लेकर रौब से देखा। दर्पण ने उनका अज्ञान चूर–चूर कर दिया। उन्होंने देखा–

श्रवण समीप भयउँ सित केशा।

कानों के समीप बाल सफेद हो गये हैं, मानों वृद्धावस्था का स्पष्ट संकेत हो रहा है। अब **'सब तजि हरिभज '** का समय जान दशरथ के मन में विषयों से वैराग्यभाव का उदय हुआ। नारद जी विश्वमोहनी के स्वयम्वर में अकड़ कर बैठे हुए थे। उनके मन में गलत–फहमी थी, कि विश्व में वे सबसे अधिक सुन्दर हैं। जब हरि के गण उनकी ओर कनखियों से बार–बार देखकर मुस्कराये तो नारद जी को क्रोध आया।' इन मूर्खों की ये जुर्रत कि मेरा मजाक उड़ायें ?' जब उन्होंने दर्पण देखा तो **'मर्कट बदन भयंकर देही'** बानर की आकृति देखकर तन बदन में आग लग गई और यथार्थ को स्वीकार करने की अपेक्षा निज अज्ञानवश भगवान विष्णु को शाप दे डाला। मन का दर्पण जगत और जगदीश्वर दोनों को दिखाने वाला होता है। ज्ञान रूपी नेत्रों से मनरूपी दर्पण में समस्त विश्व के कार्य तथा कारण सूक्ष्म तन्मात्रा, अन्तःकरण चतुष्ट्य मूल प्रकृति पर्यन्त सब कुछ देखकर निस्त्रैण्यता की ओर गमन किया जाता है। तभी जन्म–मरण तथा कर्म जाल की कारण भूता अविद्या का नाश होता है। अविद्या की निवृत्ति ही योग की स्थिति है।

जब आँखों से दिखाई न पड़ता हो तथा मन रूपी दर्पण भी गंदा हो तो फिर स्वरूप की पहिचान कैसे हो सकती है। गोस्वामी तुलसीदास जी एक अर्धाली में योग का पूरा सिद्धान्त कह देते हैं:–

नयन अंध मन मुकुर मलीना।

राम रूप देखहिं किमि दीना।।

प्रभु दर्शन या आत्म साक्षात्कार के लिए दो आवश्यकतायें हैं एक बुद्धि सूझबूझ वाली, विमल विवेक युक्त हो दूसरे मन विषयों की धूल से मलिन न हो। दोनों में से एक चीज की भी कमी होगी तो गाड़ी बीच में अटक जायगी। दर्पण का स्वभाव वस्तु के रूप को दिखाना है। मन जब इन्द्रियों के साथ जुड़ जाता है तो इन्द्रियों को विषय लोलुप बना देता है जैसे मृग रेगिस्तान में रेत की लहरों को जल समझकर व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार मन विषयों में सुख शान्ति

और आनन्द का आभास कर इन्द्रियों तथा बुद्धि को भ्रमित कर डालता है। दर्पण की एक और विशेषता है, दर्पण दोष देखने के काम आता है, वह आदर्श कहा जाता है। वह बता देता है कि कहाँ क्या कमी है? प्रायः मनरूपी दर्पण दूसरों के दोष देखने का काम किया करता है। सुबह से शाम तक हमारा मन रूपी दर्पण दूसरों के दोषों को देखने से मैला होता रहता है। मन का सबसे निकट का सहायक रसना है। मन के इशारे पर रसना भी परनिन्दा में बहुत रस लेती है। जब दो लोग मिलते हैं तो जब तक किसी के निन्दा के कुछ शब्द न कहलें तब तक दिल को तसल्ली नहीं हो पाती। आजकल निन्दा रस सबसे मधुर रस माना जाता है।

परनिन्दा सम अघ न गिरीशा।

इस अर्धाली के एक अंश में गोस्वामी ने कहा है कि परनिन्दा से दूसरे का कुछ भला नहीं होता हाँ अपना मन दूसरे के दोषों के सूक्ष्म परमाणुओं से अवश्य गन्दा हो जाता है। मुकुर का स्वभाव है कि वह दूसरों के दोष देखना जानता है अपने पीछे पीठ पर लगी हुई गन्दगी को नहीं जानता। यदि अपने दोषों को दर्पण देख सके तो मन की एकाग्रता तथा चित्त की शुद्धि आसानी से सम्भव हो सकती है। सन्त कबीर आदि ने इसी रहस्य को सीधे-सीधे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है-

बुरा जो देखने मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजूँ आपणा, मुझ से बुरा न कोय।।

अपनी पहचान ही सच्ची पहचान है। यही आत्म साक्षात्कार है अपने मन की जाँच पड़ताल, उठते, बैठते, सोते, जागते, चलते-फिरते करते रहने से मन रूपी दर्पण में ठीक-ठीक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ेगा। जब तक मन रूपी दर्पण इस प्रकार न हो जाय कि बाहर और भीतर ऐ जैसा दिखाई पड़ने लग जाय, मन-वाणी और कर्म में कोई अन्तर न रहे; तब तक मन पर कतई भरोसा नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह मन बहुत बड़ा बहुरूपिया है। क्षण में ज्ञानी, क्षण में योगी, क्षण में चोर और क्षण में साधु बनकर संस्कार चक्र घुमाता रहता है। जो कोई साधक श्री गुरु-चरणों की अनन्य भक्ति से इस मन की चाल पहिचान लेता है वह इसके पीछे का मैल साफ कर इसे पारदर्शक बना लेता है। जीवन्मुक्ति का आनन्द साफ मन में ही प्राप्त होता है। राम चरित मानस में कहा है।

निरमल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

मन जब मलिन होता है तभी कपट, छल छिद्र, दम्भ, पाखण्ड आदि विकार घेर लेते हैं मन की मलिनता जब तक दूर नहीं होती तब तक साधक सहज तथा सरल नहीं बन पाता। बिना सहज तथा सरल बने सहज एवं अविनाशी का साक्षात्कार नहीं हो पाता। गीता में भगवान ने दैवी सम्पत्ति के प्रसंग में साधक की एक दैवी सम्पत्ति '**आर्जव**' बताई है। आर्जव का अर्थ है सरलता, निष्कपटता।

सहजै सहज मिलै रघुराई।

जीवन्मुक्त के स्वरूप का विवेचन करते हुए मोक्ष शास्त्रों में दर्पण की एक सुन्दर उपमा आती है। शिष्यों ने गुरुदेव से पूछा– 'प्रभु जीवन्मुक्त होने पर जीवन कैसा हो जाता है ?' गुरुदेव ने कहा– "प्रिय ! जिस प्रकार निर्मल दर्पण के पीछे रत्न की ज्योति रखी हो तो वह जैसे हर समय साफ–साफ झलकती है बाहर और उस आत्मा की ज्योति के बीच में झीना–झीना मन रूपी दर्पण का परदा (प्रारब्ध कर्मभोग) रहता है। लेकिन वह भी इतना निर्मल होता है कि लगता ही नहीं जैसे बीच में कोई परदा हो ?" जो अपने मन–मुकुर को संस्कारों की गंदगी से हर समय झाड़–पोंछ कर साफ सुथरा करते रहते हैं उनका मन एक दिन ऐसा ही बन जाता है कि वे इस जीवन में ही योग की सविकल्प तथा निर्विकल्प भूमिकाओं में अक्षय आनन्द का अनुभव कर लेते है। ऐसे पुण्यात्मा जीवन्मुक्त बन जाते हैं।

मन की मलिनता कैसे दूर हो? इसकी मलिनता दूर करने के लिए लोग तरह–तरह के वेश बनाते हैं, व्रत, उपवास तथा तीर्थ करते हैं। इनसे कुछ–कुछ सफाई होती है, वह भी तब जब इन साधनों में सोलह आना दृढ़ विश्वास हो। देखा देखी से कुछ अधिक लाभ नहीं होता। हाथी जैसे स्नान कर साफ हो जाता है फिर कुछ ही देर में सिर पर धूल डालकर जैसे का तैसा बन जाता है। उसी प्रकार तीर्थ व्रत करते समय मन लगता है, जैसे पूर्ण संत बन गया हो किन्तु मौका मिला नहीं कि परनिन्दा, विषय वासना, कामक्रोध लोभ के पीछे कुत्ते की तरह भागने वाला बन जाता है। तब तक मन पर पूर्ण सद्गुरु की कृपा नहीं होती जब तक यह ज्ञान वैराग्ययुक्त होकर शौचाचारयुक्त नहीं बन पाता। गोस्वामी जी मन मुकुर की सफाई का अनूठा उपाय बताते हैं:–

श्री गुरुचरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।

शीशे की सफाई रजकणों से करते हैं उससे शीशा साफ दमकने लगता है। श्री गुरुदेव के चरणकमल की रज से जब यह मन मुकुर मांजा जायगा तो इसकी मलिनता दूर हो जायगी। मन जितना कोमल और नाजुक है–शीशे से भी ज्यादा नाजुक है। किसी की याद में ही टूट कर बिखर जाता है– उसकी सफाई के लिए उसी तरह की कोमल रज चाहिए। कमल के पराग से कोमल क्या वस्तु होगी ? श्री गुरुदेव के चरण कमलों, के पराग से मन मुकुर साफ होगा। कैसे होगा ? 'सुधारि' अच्छी तरह हृदय मन्दिर में चरणकमलों को धारण करने से। अपने मन को चरणकमल के पराग का लोभी भौंरा बना देने से। श्रीगुरु चरणों का ध्यान करने से। क्योंकि ध्यान का मूल आधार '**ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोर्पदम्**' श्री गुरुदेव के चरणकमल हैं। उनका दिव्यवपु ध्यान का मुख्य साधन और साध्य है। चरण कमल पूजा के मूल में सिद्धि के हेतु है। गोस्वामी जी सिद्धयोगी थे। अतः उन्हें भगवान शंकर जी की कृपा शक्ति के पात से–साधना के सभी रहस्य स्पष्ट अनुभव अभ्य हो गये थे। उन्होंने सिद्धयोग के साधकों के लिए एक अचूक, अमोघ–रामवाण औषधि ढूंढ़ निकाली– श्री गुरुदेव के चरणों की निष्काम भक्ति,ध्यान तथा गुरुपदिष्ट मंत्र का सतत जप। उसी से दिव्य दृष्टि पाकर साधक अपने मन चित्त तथा बुद्धि में संस्कार चक्रों का दर्शन कर सारे संस्कारों को भोगकर खत्मकर सकता है और इसी जन्म से जीवन्मुक्त हो सकता है। श्री गुरुदेव के चरण–कमलों की रज नेत्रों को दिव्य दृष्टि प्रदान करने वाली है–

श्री गुरुपद रज मणिगण ज्योती।

सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

तथा–

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन।

नयन अमिय दृग् दोष विभंजन।।

नेत्रों का दोष भ्रम, संशय तथा मिथ्या प्रतीति है। यदि नेत्रों में पीलियां हो जाय तो हर चीज पीली ही पीली नजर आती है। इसी तरह जब अज्ञान और अविद्या के कारण ममता मोह तथा अहंकार तथा कामनायें नेत्रों को अंधाकर देती हैं। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को ढककर अन्यथाभास होने लगता है। इसे वेदान्त की भाषा में आवरण तथा विक्षेप कहते हैं। आवरण तथा विक्षेप ही नेत्रों का अन्धापन है जिसके मूल में कामनाओं का वृत्ति प्रवाह रहता है। गोस्वामी जी इसलिए कहते हैं–

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही।

तथा–

ममता तिमिर तमी अँधियारी।।

ममता, अहंता तथा स्वार्थ वस्ता अपने दोष न देखकर दूसरों में दोष देखने का आदी बना देती है। कहा जाता है कि– " **अर्थी दोषं न पश्यति** " ममता वश व्यक्ति को अपने गुण ही दिखाई पड़ते हैं और दूसरों के अन्दर दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। जब साधक पर गुरु कृपा होती है तब उसका हृदय दूसरों के गुण देखता है और अपने अन्दर के दोष ढूँढ़–ढूँढ़ कर निकाल देता है। यदि कूड़ा कचड़ा दबाकर रखा जाएगा तो एक दिन सड़कर रोगी मर सकता है। यदि मन के दोषों की कड़ी जांच पड़ताल होती रही, – प्रतिदिनआत्म निरीक्षण, संध्या सम्यक् धारणा ध्यान होता रहे तो मन की दौड़ कम होने लगती है। मन बहिर्मुखता से मुड़कर अन्तर्मुखी बनने लगता है जिससे बुद्धि तथा चित्त का साथी बन जीवन के कर्त्तव्य का ठीक–ठीक बोध करा दिया करता है। मन पर मंत्र का पहरा बैठाना जरूरी है। खाली मन शैतान का अड्डा। वृत्ति संस्कार चक्र जप द्वारा बदलता है। यदि क्लिष्ट वृत्तियों के संस्कार प्रवाहित हो रहे हैं तो जप तथा ध्यान से वृत्ति चक्र ठहर जायगा। यदि धारणा और ध्यान समाधि में परिणत होने लगता है तो उस समय ध्येय रूप के गुणों का प्रवाह चल पड़ेगा। ध्यान होगा ही सतोगुण की बढ़ी हुई दशा में। अतः यह निश्चित है कि समाधि दशा में सतोगुणी वृत्तियों का सबल प्रवाह होने से अक्लिष्ट वृत्तियों के संस्कार उदित होकर सुख और शांति का अनुभव होगा। गुरुपदिष्ट मंत्र का मनोजप कर मन को उसके अर्थ में भावविभोर कर लेने पर मन का दर्पण उजला बन जायगा। सन्त रज्जब ने नाम जप तथा ध्यान को मन की निर्मलता के लिए परमावश्यक माना है :–

' नाम बिन मन निर्मल नहि होय '

आन उपाय अनन्त अध लागैं,

बहुत भांति कर जोय।
योग यज्ञ जप तप व्रत संयम,
करते हैं सब लोग।।
धर्म नेम दान पुनि पूजा,
मुक्त सुन्या न कोय।
ज्ञानी गुणी शूर कवि पण्डित,
ये बैठे सब रोय।।
मरम न भूल समझ सुन प्राणी,
यहु साबुण नहिं सोय।
जन रज्जब मन होय न निर्मल,
जल पाषाणहि धोय।।

जप और ध्यान से मन में आत्म–प्रकाश हो जायगा फिर जीवन गुणग्राही बन जायगा। मन बुरा सोचने और बुरा करने से स्वयं भाग खड़ा होगा। जीवन में पुण्य कर्मों की बाढ़ आने लगेगी। हर क्षण हर घड़ी चारों ओर आनन्द की वर्षा होनी शुरू हो जायेगी। यह जगत विषम ज्वाला से जलते जंगल से बदल कर कुसुमित नन्दनवन बन जायगा जहाँ जीवन और मृत्यु दोनों के ही महोत्सव लगने लगेंगे।

मां चेन्न पास्यसि ततो भगवन्ममैव
हानिर्भवेदिति तु नो मननीयमीश।
यर्वेश्वरस्य करुणादिगुणामृताब्धे-
र्दासो हि सीदति जना इति वै क्षिपेयुः।।

भगवन् ! हे ईश ! आप यदि मेरी रक्षा न करेंगे तो आप यह न समझें कि उससे केवल मेरी ही हानि होगी; किन्तु 'अहा देखो, सर्वेश्वर का सेवक होकर भी दु:ख पा रहा है' यह कहकर जनता भी आपको उलाहना दिये बिना नहीं रहेगी।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

" भारतीय कला पर सिद्धयोग का प्रभाव "

डॉ. राजकिशोरी सिंह कानपुर

भारतीय कला मनोमय जगत से भूतमय जगत जोड़ता है और यह भी सत्य है कि भूतमय जगत से उत्पन्न वेदनाएँ मानव के मनोजगत को प्रभावित करती हैं। इस दृष्टिकोण से मनिषियों, संतों और योगियों की लम्बी चिन्तन परंपरा कला के गुह्य स्वरूप से सम्बन्धित रहा है। इन सबके मूलार्थ में आनन्द की खोज रही है। योग की अन्तर्भूमिकाओं में अनुभूतियों को रूपायित एवं शब्दायित करने की ललक सहज ही साहित्य और कला को जन्म दिया है। सिद्धों की कृपा से जो अन्तःकरण में दिव्य संवेदनाएं जागृत होती हैं, यही साधक की आध्यात्म यात्रा भी है। इसी को सिद्धयोग कहा गया है।

व्यष्टि चेतना अर्थात् कुंडलिनी शक्ति में स्पन्दन होने पर ही सार्थक एवं उच्चकोटि की कलात्मक अभिव्यक्तियाँ होती हैं। रामचरित मानस के रचनाकार तुलसीदास ने भी उस स्पन्दन को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है–

यथा सुअंजन अंज दृग, साधक सिद्ध सुजान।

कौतुक देखहिं शैल वन, भूतल भूरि निधान।।

अन्तःचक्षु के द्वारा प्राप्त अनुभूतियों की चर्चा वेद, उपनिषद, आगम, पुराण तथा रामायण, महाभारत में किया गया है, वे विवरण सभी सम्प्रज्ञात ज्योति जनित हैं। भारतीय संस्कृति, कला एवं साहित्य इसी चित्त के स्पन्दन से ही परिचालित होती रही है। भारतीय कला के परम्परागत विकास का इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि चित्रण तत्व विचार, रस और कल्पनात्मक सौन्दर्य की उत्पत्ति कलाकार के व्यवस्थित चित्त के ऊपर निर्भर करता है।

सिद्धयोग का अर्थ सीधा और सहज है **" कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोग "** अर्थात् सिद्धों, संतों, अर्हतों अथवा अवतारी पुरुषों की कृपा से सामान्यजन में अकस्मात अन्तर्दृष्टि अथवा सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था तक पहुँचना। जिसका विवरण सारे पुराण, रामायण तथा महाभारत में बहुतायत से मिलता है। सिद्धयोग का मार्ग साकार उपासना से शुरू होकर निराकार की ओर ले जाता है। साकार उपासना में मूर्ति, चित्र तथा मंत्र व प्रतीकों का प्रयोग है। भारतीय आध्यात्म की यह साकार उपासना की पद्धति ही भारतीय कला का मूल है।

जब हम भारतीय कला की बात करते हैं तो हमें 'भारतीय' शब्द के इस अर्थ पर भी विचार करना चाहिए– भा, अर्थात् भाषमान्, ज्योतिर्मय, ज्ञानमंडित और 'रतीय' लीन, समाहित या रमा हुआ। अर्थात् ऐसी कला जो आन्तरिक ज्योति में रत होकर रची गयी हो। यह आन्तरिक ज्योति बिना योग साधना के अथवा सिद्धयोगी की कृपा के बिना सम्भव नहीं है।

वैदिक काल से लेकर गुप्त काल तक की कला, मूर्तिकला, शिल्प, स्थापत्य, संगीत साहित्य एवं नृत्यकला सभी आध्यात्मपूर्ण भाव, तथा रस प्रधान हैं इसलिए ही इतनी

स्पन्दनात्मक तथा सजीव हैं। ठीक इसके विपरीत यूनानी, रोमन, मिस्त्र, पश्चिम आदि की कला में केवल लौकिक देहयष्टि सौन्दर्य की प्रधानता, भौतिक भोगवाद की प्रचारात्मक चेष्ठा परलक्षित होती है। साँची, अंजता, एलोरा के चित्र एवं मूर्ति को मिस्त्र या रोमन मूर्तियों से तुलना करने पर यह अन्तर स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

भारत में ऋषियों एवं योगियों की अन्तःदृष्टि ने जिस प्रकार यज्ञ–वेदियों के निर्माण की कला को जन्म दिया उसी प्रकार साधारण मानव को सुचारु रूप से जीवन जीने के लिए एवं उनके मंगल हेतु समाधि अवस्था में जो कुछ भी विलक्षण देखा उसे प्रतीकों के माध्यम से जन साधारण में प्रचारित किया, जो आज तक तीज–त्योहारों एवं विवाह तथा मांगलिक अवसरों पर घरों एवं दिवारों पर रचा जाता है। ये मांगलिक चिन्ह या प्रतीक सृष्टि के आरम्भ में जैसे थे वैसे ही आजतक अपरिवर्तनीय अवस्था में चले आ रहे हैं।

भारतीय संस्कृति के विकास में वैदिक युग को महर्षि अरविन्द ने प्रतीकात्मक युग कहा है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, वरूण, इन्द्र, सर्प, वृक्ष शब्दों से तात्पर्य इनके अनुरूप प्राकृतिक तत्वों से न होकर उनके पीछे काम करने वाली शक्तियों से था।

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार को मानव जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। पश्चिम में धर्म, अर्थ और काम ये तीन ही जीवन के लक्ष्य रहे हैं। इसी कारण हम अध्यात्म के द्वारा कला साहित्य, दर्शन सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व विकास कर सके हैं। जहाँ तक भारतीय चित्र, मूर्तियों में नग्नता का प्रश्न है ? इसका उत्तर विचारोत्तेजक प्रवचन कर्ता आचार्य रजनीश (ओशो) का मानना है कि– नंगापन मन की एक वृत्ति है। हम में सरलता हो, निर्दोष चित्त हो तो नग्नता भी सार्थक हो जाती है। वह भी एक सौन्दर्य का रूप ले लेती है। अहंकारशून्यता में ही आत्म–स्फुरण होता है। इस स्फुरणा के ही कारण कलाकार अत्यंत मोहक, अतिसुन्दर और उत्कृष्ट कलाकृति बना पाता है। तीर्थंकर महावीर को जैन मूर्तियों में नग्न चित्रित करने का अभिप्राय मात्र यह है कि वे अहंकार शून्य, आत्म–प्रतिष्ठित और शिशुओं की तरह निर्दोष चित्त हैं।

शैव–योग, बौद्ध एवं तंत्र साधना में षट–चक्रों के साधना सम्बन्धी चक्र आकृतियाँ एवं उनमें मातृकाओं के स्वरूप का चित्रण अपूर्व है तथा गहन गवेषणा का विषय है। विन्दु–नाद–कला ही सूक्ष्म जगत को स्थूल भौतिक जगत से जोड़ता है। सारा सृष्टि संरचना, स्थित और संहार जहाँ अव्यय अव्यक्त ईश्वर द्वारा किया जा रहा है वहीं मानव भी इन्हीं विन्दु–नाद–कला के स्वरूप द्वारा जगत में स्वतंत्र रूप से सर्जन करने की शक्ति रखता है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

ईश्वर–प्रणिधान से समाधि–लाभ

श्री मनमोहन कृष्ण त्रिखा

किसी भी क्षेत्र में शिक्षा प्राप्त करने के लिये एक सुनिश्चित कोर्स करना पड़ता है। योग के विद्यार्थी को भी समाधि–लाभ करने के लिये एक कोर्स को पूरा करना होता है। योग के विद्यार्थी को पहले अपने मन को एकाग्र करके इन्द्रियों का साक्षात्कार करना चाहिये, इन्द्रियों के पश्चात् मन, मन के बाद बुद्धि और बुद्धि के बाद आत्म–साक्षात्कार करे। भगवान श्रीकृष्ण ने योगियों के कोर्स को इन शब्दों में कहा है–

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो, बुद्धेः परतस्तु सः।

इस लिखे कोर्स का अनुसरण करने से कोई भी व्यक्ति समाधि तक अवश्य ही पहुँच सकता है। फिर भी भगवान पतंजलि ने सर्व साधारण के लिये समाधि–लाभ का एक सरल उपाय समाधि पाद के 23 वें सूत्र में बताया है। वह है–

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।। 1/23 ।।

इस सूत्र का व्यास–भाष्य इस प्रकार है–

प्रणिधानाद्भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वर–स्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण।

तदभिध्यानादपि योगिन आसन्नतमस्समाधि लाभः,समाधिफलञ्च भवतीति।

इस सूत्र का अर्थ है कि ईश्वर–प्रणिधान से भी समाधि आसन्न होती है। ईश्वर, जो भक्ति विशेष से जाना जा सकता है। ध्यान करने वाले योगी पर अनुग्रह करता है और उसे समाधि–लाभ प्राप्त होता है। हृदय के अन्तरतम प्रदेश मे ईश्वर की सत्ता का अनुभव करते हुए आत्म–निवेदनपूर्वक उसी पर निश्चिन्त रहना भक्ति या प्रणिधान का स्वरूप है। यहाँ भक्ति विशेष का अर्थ है– निरन्तर प्रभु का चिन्तन व ऐसी भक्ति को जिसमें तन, मन, बुद्धि–अहंकार आदि सब ईश्वरार्पित कर दिया जाता है और जिसमें यह भावना परिपक्व हो जाती है कि सब कुछ ईश्वर का ही है, ईश्वर–प्रणिधान कहा गया है। ऐसा अनुभव करना कि सभी कार्य ईश्वर द्वारा प्रेरित होकर हो रहे हैं। ऐसी स्थिति तभी आती है जब साधक अहंभाव का त्याग करके अपने जीवन के प्रत्येक कर्म एवं उसके फल को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दे। प्रणिधान तब सिद्ध हुआ माना जायेगा, जब साधक अहंकार रहित होकर सबमें अपने आप को देखे और अपने आप में सबको देखे। संसार की प्रत्येक वस्तु में उसे भगवान के ही दर्शन होते हैं।

एक महान् भारतीय सन्त का उदाहरण यहाँ बिल्कुल उपयुक्त प्रतीत होता है। वह अपनी रोटी बना रहे थे। जो रोटी उन्होंने बनाकर एक ओर रखी, वह एक कुत्ता उठा कर ले गया। अब कुत्ता आगे–आगे और संत पीछे–पीछे। सन्त के हाथ में घी की कटोरी है और वे कह

रहे हैं – भगवन् ! रुक तो जाओ, रोटी सूखी है, चुपड़ लेने दो, फिर खा लेना। यह ईश्वर–प्रणिधान के सिद्ध होने का एक प्रमाण है। उन संत को कुत्ते में भी ईश्वर का आभास हुआ। उसी प्रकार से मीरा की भी सभी दिशाओं में और सभी वस्तुओं में अपने कृष्ण के ही दर्शन होते थे। उनके लिए पूरा जगत् ही कृष्णमय था। इसी प्रकार से गोस्वामी तुलसीदास जी को जड़–चेतन संसार भगवान् राम का स्वरूप ही दिखाई देता था। बालकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं–

दोहा

जड़ चेतन जग जीव जे, सकल राममय जानि।

बन्दौ सबके पद-कमल, सदा जोरि जुगपानि।।

गोस्वामी जी कहते हैं कि संसार में जितने भी जड़ और चेतन जीव हैं, उनको राममय जानकर दोनों हाथ जोड़कर सदा प्रणाम करता हूँ। इसके आगे गोस्वामी जी ने निम्नलिखित चौपाई में भी यही भाव प्रकट किये हैं –

आकर चार लाख चौरासी।
जाति जीव नभ-जल-थल वासी।।
सियाराममय सब जग जानी।
करों प्रणाम जोरि जुगपानी।।

–बालकाण्ड 1–2

अर्थात् जीवों की चार खानि हैं और उनमें चौरासी लाख भेद हैं और वे जल, भूमि और आकाश में रहने वाले हैं। सब संसार को सीताराममय जानकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। यह विशेष भक्ति या ईश्वर–प्रणिधान का एक उपयुक्त उदाहरण है। जिसमें गोस्वामी तुलसीदास जी को पूरा जगत् ही राममय दिखाई देता है। यह स्थिति तभी प्राप्त होती है जब साधक अपने शरीर, इन्द्रियों, मन, प्राण, बुद्धि तथा इनसे होने वाले कर्म एवं उनके फलों को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दे। योग–योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने भी आत्म–समर्पण की यही व्याख्या दी है–

यत्करोसि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

–गीता 9–27

अर्थात् जो भी कार्य तू करता है, जो खाता है, हवन करता है, दान करता है और जो तप करता है, वह सब मुझ (ईश्वर) को अर्पण कर दे। क्योंकि ऐसा करने से तू शुभ और अशुभ कर्मों के बन्धनों से मुक्त हो जायेगा और तू मुझको प्राप्त होगा। यहाँ मुझको (ईश्वर) प्राप्त होने का ही अर्थ है– समाधि–लाभ।

भगवान् श्रीकृष्ण जी ने ईश्वर–प्रणिधान को भगवान–प्राप्ति का उपाय बताते हुए

कहा है–

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैव, मात्मानं मत्परायणः।।

–गीता 9–34

अर्थात् तुम मुझमें ही मन लगाओ, मेरे ही भक्त बनो, मेरा ही (ईश्वर का) पूजन करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस प्रकार मेरी शरण होकर आत्मा को मुझमें ही समाहित करके तुम मुझको (समाधि–लाभ) ही प्राप्त होंगे। गीता के 18 वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण जी ने कहा है–

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि सत्यं ते, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

–गीता 18/65–66

हे अर्जुन ! तुम अपना मन केवल मुझमें ही रखो, मेरे ही भक्त बनो, मेरी ही पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। ऐसा करने पर तुम मुझे ही प्राप्त होंगे। यहाँ 'मुझे ही प्राप्त होंगे' का अर्थ समाधि–लाभ से ही है। हे अर्जुन ! यह मैं तुम्हें सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे बहुत प्यारे हो। सब धर्मों का आश्रय छोड़ कर तुम मेरी ही अनन्य (एकमात्र) शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापों से छुड़ा दूँगा। तुम किसी भी प्रकार की चिन्ता न करो। यह है आत्म–समर्पण या ईश्वर–प्रणिधान का फल जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के नवें अध्याय में यह भी कहा –

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या, भक्ता राजर्षयस्तथा।

अनित्यमसुखं लोकमिमं, प्राप्य भजस्व माम्।।

–गीता 9/32–33

अर्थात् हे अर्जुन ! मेरे अनन्य शरण होने से स्त्री, वैश्य और शूद्र तथा चाण्डाल आदि पाप योनि वाले भी परम गति को प्राप्त होते हैं। फिर पुण्य योनि ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तों, जो मेरी शरण में आते हैं, की बात ही क्या है। इसलिये तुम इस अनित्य और सुखरहित मनुष्य जन्म को पाकर निरन्तर मेरा ही भजन करो। भगवान श्रीकृष्ण जी ने यहाँ ईश्वर–प्रणिधान को समाधि–प्राप्ति (ईश्वर–प्राप्ति) का उपाय न केवल पुण्य योनियों के लिए बताया है, अपितु इसे पाप–योनि जीवों के लिये भी भगवत्–प्राप्ति या समाधि–लाभ का सरल उपाय बताया है।

अतः योग–मार्ग के साधक जो शीघ्र समाधि–लाभ प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, उन्हें

ईश्वर को सर्व शक्तिमान एवं सर्वव्यापी समझ कर अपना शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार एवं सभी कर्म और उनके फल उनके चरणों में समर्पित कर देने चाहिए, भगवान् श्रीकृष्ण जी का वचन है कि ऐसा करने पर अवश्य ही साधक को समाधि–लाभ होगा।

क्या परमात्मा पक्षपाती है ?

- स्वामी विवेकानन्द -

यह सृष्टि किसने की? ईश्वर ने। अंग्रेजी में 'गॉड' शब्द का जो प्रचलित अर्थ है, उससे मेरा मतलब नहीं। निश्चय ही उस अर्थ में नहीं, बल्कि उससे काफी भिन्न अर्थ में प्रयोग का मेरा अभिप्राय है। अंग्रेजी में और कोई उपयुक्त शब्द नहीं है। संस्कृत 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग करना ही सबसे अधिक युक्तिसंगत है। वही इस जगत्–प्रपंच का सामान्य कारण है। ब्रह्म क्या है? वह नित्य, नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ, परम दयामय, सर्वव्यापी, निराकार, अखण्ड है। वह इस जगत् की सृष्टि करता है। अब यदि कहें कि यही ब्रह्म संसार का नित्य स्रष्टा और विधाता है, तो इसमें दो आपत्तियाँ उठ खड़ी होती है। हम देखते हैं कि जगत् में पक्षपात है। एक मनुष्य जन्मसुखी है, तो दूसरा जन्मदु:खी, एक धनी है तो दूसरा गरीब। इससे पक्षपात प्रतीत होता है। फिर यहाँ निष्ठुरता भी है, क्योंकि यहाँ एक जीवन दूसरे के मृत्यु के ऊपर निर्भर करता है। एक प्राणी दूसरे को टुकड़े–टुकड़े कर डालता है और हर एक मनुष्य अपने भाई का गला दबाने की चेष्टा करता है। यह प्रतिद्वन्द्विता, निष्ठुरता, घोर अत्याचार और दिन रात की आह, जिसे सुनकर कलेजा फट जाता है– यही हमारे संसार का हाल है। यदि यही ईश्वर की सृष्टि हुई तो वह ईश्वर निष्ठुर से भी बदतर है, उस शैतान से भी गया – गुजरा है, जिसकी मनुष्य ने कभी कल्पना की हो। वेदान्त कहता है कि यह ईश्वर का दोष नहीं जो जगत् में यह पक्षपात, यह प्रतिद्वन्द्विता विद्यमान है। तो किसने इसकी सृष्टि की? स्वयं हमीं ने। एक बादल सभी खेतों पर समान रूप से पानी बरसाता रहता है। पर जो खेत अच्छी तरह जोता हुआ है वही इस वर्षा से लाभ उठाता है। एक दूसरा खेत जो जोता नहीं गया, या जिसकी देखरेख नहीं की गयी, उससे लाभ नही उठा सकता। यह बादल का दोष नहीं। ईश्वर की कृपा नित्य और अपरिवर्तनीय है, हमीं लोग वैषम्य के कारण हैं। लेकिन कोई जन्म से ही सुखी है और दूसरा दुखी, इस वैषम्य का कारण क्या हो सकता है? वे तो ऐसा कुछ नहीं करते जिससे यह वैषम्य उत्पन्न हो। उत्तर यह है कि इस जन्म में न सही, पूर्व जन्म में वैषम्य उन्होंने अवश्य किया होगा, और यह वैषम्य पूर्व जन्म के कर्मों के ही कारण हुआ है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

क्रिया योग

श्री शिवनाथ मेहरोत्रा

योग के सैकड़ों स्वरूप इस समय चलित हैं, जिसमें शारीरिक आसन–मुद्राओं से लगाकर " **योग** " तक के अनेक प्रभेद हैं। योगासनों को 'योग' के रूप में सिखाने वाली अनेक संस्थायें कार्यरत हैं। किसी भी रूप में योग का जैसा कुछ अभ्यास हो जाय उससे कुछ लाभ तो होता है, परन्तु एक कहावत है–

देखा देखी साधे जोग।

छीजे काया बाढ़े रोग।।

यह भी एक सही बात की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। योग के आसनों को प्रशिक्षक या सही पुस्तक का आश्रय लेकर ही सीखना उचित है। योगासनों द्वारा शारीरिक चुस्ती व स्फूर्ति का अनुभव अवश्य होता है। परन्तु सही मायनों में इन्हे योग–अभ्यास नहीं कहा जा सकता। हाँ, बाल्यावस्था में जिन्होंने सही ढंग से योगासनों का अभ्यास किया है, वे इनके प्रभाव से वृद्धावस्था तक जवान बने रहने का अनुभव करते हैं, भले ही बाद में किसी कारण से योग–आसनों में प्रवृत्ति की आवश्यकता महसूस की, वे आंशिक लाभ ही उठा पाते हैं क्योंकि स्नायु–मण्डल और शारीरिक गठन की प्रक्रिया वृद्ध अवस्था में अधिक श्रम और अभ्यास के बिना सफल नहीं होने देती। कुछ चुनी हुई मुद्रायें और आसन वृद्ध अवस्था में भी सहायक होते हैं। **'जीवन–तत्व साधन'** का वर्णन यद्यपि योग की पुस्तकों में नहीं है, परन्तु वह स्फूर्ति, शक्ति और यौवन की वृद्धि में हर उम्र में सहायक होता है। साधारणतया 'यौवन' शब्द को प्रचुर जीवनी–शक्ति की अवस्था का द्योतक समझना चाहिए।

कुछ गुरु–शिष्य परम्परायें योग के अनेक आयाम प्रस्तुत करती हैं। योग शब्द की व्याख्या अलग–अलग ढंग से की जाती है। काशी में एक विश्वविख्यात योगी के आश्रम में मैं दर्शनार्थ गया। वहाँ एक शिष्य उपस्थित थे। उन्होंने बातों में बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा कि 'योग' को बताने वाले जितने गुरु और सम्प्रदाय हैं वे सब धूर्त्त और धोखेबाज हैं और सिर्फ उनके गुरुदेव ही योग के एकमात्र सच्चे शिक्षक हैं। जहाँ कहीं ऐसी बात कही जाय वहाँ यह जान जाना चाहिए कि वह सम्प्रदाय वस्तुतः योग–मार्ग से स्वयं भ्रष्ट हो चुका है। योग का साधक दूसरे साधक या सम्प्रदाय की कदापि हँसी नहीं उड़ा सकता। हर योगी दूसरे योगी को प्रेम, आदर और सहयोग ही देगा। अन्यथा वहाँ 'योग' की भावना ही नहीं है, यह जान जाना चाहिए।

योगाभ्यासी अपने आपको प्रकट ही नहीं करना चाहता। वर्षों तक साथ रहने के बाद भी साथी व्यक्ति को यह विदित नहीं हो पाता कि उसके साथ रहने, हँसने, बोलने वाला व्यक्ति योग का एक अधिकारी या सिद्ध है। काशी में सकरकन्द गली में एक स्वामी जी रहा करते थे जिन्हे लोग भिक्षा–निर्वाही समझते थे। प्रायः हर समय उनके घर का दरवाजा बन्द रहता था। एक

बार संयोग से दरवाजा खुला रह गया। मुहल्ले के बच्चों ने अन्दर ताक–झाँक की, तो देखा कि स्वामी जी महाराज पद्मासन पर बैठे हैं, आंखें मुंदी हुई हैं और पृथ्वी से कई गज ऊपर आकाश में बिना किसी सहारे के अवस्थित हैं। परिणाम यह हुआ कि मुहल्ले में यह 'तमाशा' देखने के लिए भीड़ लग गई। उक्त दण्डी स्वामी ने बाद में वह निवास–स्थान दूसरे दिन ही त्याग दिया और वे अज्ञात स्थान पर चले गये। यह घटना मुझे सकरकन्द गली निवासी स्व० पं. केदारनाथ जी झिंगरन ने सुनाई थी और उन्होंने स्वयं उन महात्मा जी को देखा था। प्रायः ऐसी ही घटना योगिराज श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी जी की पत्नी के साथ घटित हुई थी। वर्षों अपने पति के साथ रहते भी उन्हें उनका योगैश्वर्य विदित नहीं था और इसी कारण एक मध्य–रात्रि में जब उनकी नींद खुली तो अपने स्वामी को पद्मासन में आकाशस्थ देखकर वे अभिभूत हो गई।

आज तो ऐसी स्थिति है कि लोग अपने आपको योगाचार्य या सिद्धयोगी के रूप में घोषित करने के हर अवसर पर प्रयास करते हैं। काशी में ऐसे ही योगिराज भारत के एक प्रसिद्ध आश्रम से पधारे तो उनका जुलूस निकाला गया। मैंने भी वह जुलूस देखा था, जो अजीब बात मैंने देखी उसका उल्लेख कर रहा हूं। एक व्यक्ति जुलूस में से नीचे से एक हार हाथी पर बैठे हुए महात्मा जी पर उछालता था जिसे महात्मा जी नीचे प्रसाद के रूप में डाल देते थे। वही व्यक्ति दुबारा पुनः उसी हार को ऊपर उछाल देता था। भीड़ में कोई इस दृश्य को देख पाता तो कोई देखना नहीं चाहता था। ऐसे मण्डलेश्वर– योगेश्वरों से कोई योगी होने की आशा करके सम्पर्क करे तो कितना **'योग–लाभ'** प्राप्त करेगा?

एक सज्जन एक व्यक्ति को प्रभावित करने के लिए प्रतिदिन अपने योग में उच्च स्थिति प्राप्ति के विवरण बताया करते थे। चूँकि वे दोनों गुरु–भाई थे अतः दूसरा व्यक्ति उन सब बातों को सच मानता था। इस सम्बन्ध में वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रचारक महाशय पर विश्वास करने वाले दूसरे सज्जन को इतनी बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ी, जिसे वे कई वर्षों तक रो–रोकर सहते रहे। इससे यह बात समझ लेनी चाहिए कि जो लोग अपने को योगाभ्यासी बता कर दूसरों पर प्रभाव जमाते हैं, उनसे पूरी तरह सतर्क रहने में ही योग–इच्छुक का कल्याण है।

एक विश्वविख्यात " सिद्धयोगी" की एक बड़ी महत्वपूर्ण आत्म–कथा छपी है। बड़े–बड़े दावे उनके शिष्य किया करते थे परन्तु उनके देहावसान के बाद उनकी सम्पत्ति जो करोड़ों में थी, गलत लोगों के हाथ में पहुंच गई।

अनेक भगवानों और महान योगियों की इस समय भारत में बाढ़ आई हुई है। इनके शिष्य गुरु को भगवान मानने के चक्कर में इनके पीछे पागल रहते हैं। ऐसे लोगों के कारण 'योग' आज उतना ही बदनाम हो गया है जितना सही ज्योतिषी न होने के कारण ज्योतिष–शास्त्र।

परन्तु इन सबके बावजूद 'योग' एक सूर्य है, जो अपने प्रकाश से समस्त अन्धकार को दूर कर रहा है और यदि योग का इच्छुक व्यक्ति 'ईमानदार' और प्रयासरत है तो वह योग के पथ पर निश्चित रूप से बढ़ता है।

योग है क्या ?

योग की सैकड़ों व्याख्याओं के चक्कर में हम फँसना नहीं चाहते। अष्टांग योग–धारणा,

ध्यान और समाधि से युक्त " **संयम** " जैसी ऊँची-ऊँची बातों के चक्कर में भी पड़ने की आवश्यकता नहीं है। शास्त्रों को पढ़ते रहिये और जन्म-जन्मान्तरों में भी इसके जाल से मुक्त होने में सफल होने की आशा न रखिये। योग का अर्थ आसन, मुद्रा और शारीरिक प्रक्रियाओं के मानने वालों को अपने मार्ग पर चलने दीजिये। योग तो ऐसी वस्तु है जो हमारे आपके हर एक के अन्तर्तम् में आबद्ध है। हर व्यक्ति का जब समय आता है तब वह अपने अन्तःकरण में उतरता है और उसे एक क्षण में ही वहाँ 'योग' की प्राप्ति हो जाती है।

हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि को छोड़ना है। यदि 'योग' प्राप्त हो जाता है तो ये आठों अङ्ग अपने आप प्राप्त हो जायेंगे, इतनी ही बात है। जगद्गुरु भगवान शंकराचार्य जी ने कहा है-

क्षणमिव सज्जन संगतिरेका, भवति भवार्णव तरिणे नौका।

एक क्षण का भी सत्संग अतिरेक प्राप्त होते ही भवसागर से नौका तर जाती है।

उस एक क्षण की प्राप्ति के लिये ही सब साधन और योगाङ्गों का आचरण किया जाता है।

परन्तु कभी-कभी वह क्षण स्वयं श्रीसद्गुरु के अनुग्रह से प्राप्त हो जाता है।

हिमालय में स्थित योगियों का महामसंघ इस समय विशेष रूप से ऐसी संकल्प किरणें प्रवाहित कर रहा है, जिसके प्रभावस्वरूप विश्व को योग का प्रकाश प्राप्त होगा। इस "सिद्ध-सङ्घ" को जिसे " व्हाइट लॉज " या " ग्रैण्ड व्हाइट लॉज " के नाम से विश्व भर में जाना जाता है। इस सनातन, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन इन चारों बाल-महर्षियों ने सृष्टि के आदि- काल में स्थापित किया और आज तक वे इसके संचालन में लगे हुये हैं। ' थियोसाफिकल सोसाइटी की मैडम ब्लावट्स्की ने इस सिद्ध-संघ की सक्रिय सदस्यता पाई थी। मैडम ब्लावट्स्की एकमात्र प्रसिद्ध पाश्चात्य महिला है, जिन्होंने इस विषय में विश्व को कुछ जानकारी दी है। भारत के जितने योग सम्प्रदाय हैं वे सभी सिद्ध-संघ के द्वारा प्रवर्तित प्रकाश से सदैव सम्बद्ध रहे हैं। अपने व्यक्तिगत अनुभव के रूप में मैं श्री सत्यसाईं बाबा को सिद्ध-संघ से सम्बद्ध समझता हूँ- यह मेरा अपना अनुभव है। भले ही बाबा को दूसरे लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए बदनाम करते रहे हैं। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के बारे में मैंने सुना है कि वे स्वयं सनत्कुमार जी के मूर्तमान अवतार हैं। इस विषय में गुरुवर योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ही आधिकारिक तौर पर बता सकते हैं। इस सिद्ध-संघ के क्रिया-कलाप और प्रशिक्षण का विस्तृत विवरण सेण्ट जर्मेन ने दिया है।

सेण्ट जर्मेन ईसामसीह के पूर्व समय में भारत आये। ईसामसीह ने इस सिद्ध-संघ में सम्मिलित होकर योग का प्रकाश प्राप्त किया था- ईसामसीह और सेण्ट जर्मेन दोनों ही गुरुभाई थे अर्थात् दोनों ने एक ही गुरु से शिक्षा ली थी। ईसामसीह द्वारा प्रेम और प्रकाश की उपासना का जो मार्ग आज विश्व भर में ईसाई धर्म के रूप में फैला है उसका उद्गम भारतीय योग ही है। इसका पूरा उल्लेख सेण्ट जर्मेन प्रेस पोस्ट बॉक्स नंबर 1133, शिकागो, इलिनियोस, अमेरिका द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों अनवील्ड मिस्ट्रीज, "दि मैजिक प्रेजेन्स", "ऐसेण्डेड मास्टर डिस्कोर्सेज", "आई एम डिस्कोर्सेज", "डिकरी बुक" आदि पुस्तकों में प्रायः दो हजार पृष्ठों में प्रस्तुत किया है।

विशेष बात यह है कि मूल तत्त्व तो केवल एक ही है जिसे समझाने के लिये और प्रयोगों का खुलासा करने के लिये इतना विस्तृत स्वरूप प्रदान किया गया है।

सेण्ट जर्मेन ने जो 'योग' प्रकाशित किया वह भगवान शंकर द्वारा वर्णित शिवसंहिता में मूलत: प्रकाशित है। कालक्रम में योगाचार्यों ने उसे सिर्फ प्रधान शिष्यों के ही ध्यान में प्रस्तुत करना उचित समझा होगा। इस योग का वर्णन भगवान श्री सत्यसाई बाबा ने अपने ग्रंथ 'ध्यान वाहिनी' में भी किया है। श्री सत्यसाई बाबा जिस प्रकार से आकाश तत्त्व से वस्तुओं को उत्पन्न कर दूसरों को उपहार में दे दिया करते हैं, सेण्ट जर्मेन ने उसी प्रकार बार-बार अनेकानेक योगाभ्यासियों को प्रत्यक्षत: मार्ग-दर्शन एवं उपहार प्रदान किये हैं। सन् 1935 तक अमेरिका व भारत में उनकी प्रत्यक्ष उपस्थिति के प्रमाण उक्त पुस्तकों में यत्र-तत्र दिये हैं। भारत में सिद्धसंघ में प्रवेश के अनेक मार्गों का विवरण दिया है- शिमला एवं दार्जिलिंग से होकर जाने का मार्ग बताया है।

काशी, बम्बई, कलकत्ता आदि में सिद्ध-संघ के प्रधान कार्यालय बताए हैं। मेरा पूर्ण विश्वास है कि सेन्ट जर्मेन का नाम लेते ही वे तत्क्षण योगाभ्यासी के समक्ष पहुंच जाते हैं व मदद देते हैं। परन्तु उनका स्पष्ट आदेश है कि मुझे, ईसामसीह को अथवा किसी भी गुरु स्वरूप को बुलाने से पूर्व पहले अपने आत्मरूप इष्ट मंत्र का उच्चारण करो। योग मार्ग में जितने भी सम्प्रदाय हैं उनमें एक ही इष्ट मंत्र है। उसी को शिव-संहिता ने भी गुप्त या संकेत रूप में वर्णित किया है और उसे ही सिद्धसंघ के महात्मा भी योग मार्ग में प्रवेशार्थी को प्रयोग करने को कहते हैं। सेन्ट जर्मेन ने अंग्रेजी में उसका अनुवाद यों किया है- " My Mighty I AM Presence " यहाँ AM बड़े अक्षरों में है। इसे आप अपने इष्ट मंत्र के रूप में उच्चारण करेंगे तो इष्ट मंत्र का वही अर्थ निकलेगा जो उपरोक्त अनुवाद से स्पष्ट होता है।

शिव-संहिता में कहा गया है:-

आत्मानमात्मना योगी, पश्यत्यात्मनि निश्चितम्।।

आत्मा से आत्मा को आत्मा में योगी देखता है। **अर्थात्**- योगाभ्यास का सम्पूर्ण विवरण इस एक सूत्र में भगवान् शंकर ने निबद्ध कर दिया है।

यह आत्मा क्या है ? इस सम्बन्ध में भगवान् शंकर उसी शिव-संहिता में विस्तृत विवरण देने के बाद एक मूल लक्षण बताते हैं:-

यस्मात्प्रकाशको नास्ति, स्वप्रकाशो भवेत्तत:।

स्वप्रकाशो यतस्तस्मात्, आत्मा ज्योति: स्वरूपक:।।

जिसका प्रकाशक कोई दूसरा नहीं है, जो स्वयं ही स्वप्रकाश से परिपूर्ण है, उस स्वयं अपने आप से प्रकाशमान आत्मा ज्योति: स्वरूप है।

ज्योति स्वरूप अपनी आत्मा को अपने में देखना-इतना ही योग है। यह ज्योति-दर्शन या आत्मदर्शन पाने के लिए अष्टांग-योग की साधना करने के बाद भी प्रवृत्त होना पड़ेगा। जिसे सुगमतम मार्ग पर चलना है वह तत्क्षण इसका प्रयोग प्रारम्भ कर सकता है। एक क्षण की ज्योतिदर्शन प्रवृत्ति समस्त पापों को विध्वंस कर योग की प्राप्ति में निमग्न कर देगी।

इष्ट मन्त्र ही ज्योति मंत्र है। शास्त्रों में कहा गया है कि मन्त्रार्थ को समझे बिना उसका जप करने से कोई लाभ नहीं होता। इष्ट मंत्र जिस आत्मस्वरूप की ओर इंगित कर रहा है उसे देखना ही योग–साधना है।

प्रकाश की आराधना के अनेक साधन हमारे यहाँ किए जाते हैं। हमारे योग के इष्ट मंत्र की तरह गायत्री मन्त्र भी प्रकाश साधना का ही मार्ग प्रशस्त करता है। कोई भी इष्ट मंत्र आपका हो उसमें प्रकाश है और उस प्रकाश को पकड़ना ही योग–साधना है। प्रकाश एवं आत्मा एक दूसरे के वाचक हैं। चाहे आत्मा को पकड़कर प्रकाश तक पहुँचें या प्रकाश को पकड़कर आत्मा में पहुँचें।

एक क्षण का प्रकाश अनन्त काल के अन्धकार को तत्क्षण दूर कर देता है। जो लोग अभाव, कष्ट व दरिद्रता या रोग आदि से ग्रस्त हैं, वे कुछ मिनटों के लिए प्रकाश में डूब कर देखें और हाथों हाथ उसके फल को स्वयं अनुभव करें। ध्यान रहे, "गुरु" शब्द का अर्थ ही अन्धकार को दूर करने वाला है और यह आत्म–गुरु समस्त प्रकाश के स्वामी हैं।

सर्वत्र प्रभु का निवास है। वही एक ब्रह्म, पुरुषोत्तम तथा अविनाशी क्षेत्र, ज्ञेय, ज्ञान और अज्ञात रूप से चार भागों में विभक्त हुआ दिखाई देता है। जब ज्ञान का सूर्य उदित हो जाता है तो जगत मिथ्या भासने लगता है। 'देवोभूत्वा देवं यजेत्' के सिद्धान्तानुसार दिव्य–भाव युक्त होकर श्रद्धा से जो भजन करता है वही अपने स्वरूप का साक्षात्कार करता है।

भक्तियोग की प्राप्ति भाव–शुद्धि से होती है। तामसिक, राजस और सात्विक भावों के अनुसार साधक को भक्ति का लाभ मिलता है। सिद्ध योग–मार्ग के साधक को गुरु–भक्ति से बढ़कर कोई तीर्थ और यज्ञ नहीं है। गुरु–भक्ति अपना रंग तभी लाती है जब गुरुदेव और ईश्वर में भेद–बुद्धि नहीं होती। गुरुदेव में ईश्वर का भाव होता है तो शिष्य का भाव उसी क्षण गुरुदेव में चिन्मयता का आविर्भाव करा देता है और गुरुदेव की शक्ति शिष्य को योगी बनाने में मदद करने लगती है। श्वेताश्वरोपनिषद् में संकेत किया गया है–

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यै ते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

–श्वेता. 6/23

अग्नि का ज्ञान न हो तो भी उसकी गर्मी का लाभ तो हर व्यक्ति को मिलता है। अग्नि की गर्मी से शीत–निवारण हो जायेगा। यदि अग्नि का ज्ञान होगा तो उससे भोजन बना कर भूख मिटा सकते हैं और दीपक जलाकर प्रकाश कर सकते हैं। अग्नि में जलाने और प्रकाश करने की दो शक्तियाँ स्वाभाविक हैं। उनका ज्ञान होने पर मनुष्य दोनों का लाभ उठा सकता है। यदि अग्नि में दिव्य–भाव है तो उसमें आहुति देकर आरोग्य, पुत्र, धन, ऐश्वर्य तथा अपनी कामनाओं की पूर्ति कर सकता है। श्रद्धा भावपूर्वक विधि–विधान से यज्ञ करने पर मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। यदि निष्काम भाव से अग्नि को देवता मान कर यज्ञ करता है तो अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तः करण की शुद्धि से तत्व–ज्ञान होता है। इसलिए–

" भाव अनूठे चाहिए, भाषा कोई होय। "

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

सिद्धपीठ (कामरूप) कामाख्या

पं. राजेन्द्र प्रसाद पाठक

शिवस्वरूप अनोदरनार महाप्रभु द्वारा स्वहस्तांक्षित लेखों में, अपने सिद्ध ब्रह्मचारियों के साथ असम (आसाम) गणराज्य की पद–यात्रा परिचर्चित है– ऐसा मनिषियों द्वारा भी कहा जाता है। उनके द्वारा यहाँ की तान्त्रिकता अज्ञान रूपों से परिकल्पित नर–भषिणी नदी, जो नाविकों द्वारा ही उपहासित: बोधित थी एवं फॉसी बाजार (गोहाटी स्थित फेन्सी बाजार) आदि के उल्लेख के साथ–साथ महादेव के पंचपीठ, सौभाग्यकुन्द, कामरूप–कामाख्या, वशिष्ट आश्रम, परशुराम कुन्द तथा दुरुह जंगलों में विचरण करने वाले गणपति स्वरूप मदमस्त गणराज्य (झुन्ड) गणों का भी पूर्ण वर्णन मिलता है। वह ही महाप्रभु आज भी इन स्थलों पर विराजमान हैं वस्तुत: उनके दर्शन वही कर सकते हैं जिन पर उनकी कृपा हो– श्री मद्भागवत महापुराण में वर्णन आता है कि– "जिस समय भगवान श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ (कंस द्वारा आमन्त्रित) रंगभूमि में पधारे,उस समय वे पहलवानों को वज्र–कठोर शरीर: ,साधारण मनुष्यों को नर–रत्न, स्त्रियों को मूर्तिमान कामदेव, गोपों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को दण्ड देने वाले शासक; माता–पिता के समान बड़े–बूढ़ो को शिशु, कंस को मृत्यु, अज्ञानियों को विराट; योगियों को परमतत्व और भक्तशिरोमणि वृष्णिवंशियों को अपने इष्ट देव जान पड़े।" अर्थात् मानस की वह शैली संकेत है जिसमें भगवान श्रीराम, महाराज जनक के रँग भूमि में–

जिन्ह के रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।। मानस

मल्ला नाम शनिर्नृणां नरवरः स्मीणां स्मरोमूर्तिमान
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रो शिशुः।
मृत्युभोज पते विंराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां,
वृष्णीनां वस्देवतेतिविदितो रंङ्गं गतः साम्रजः।।

—श्री मद्भागवत (10/43/16)

अत: श्री गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– "हे अर्जुन ! जो प्राणी भूतकाल में हो चुके हैं। जो वर्तमान में हैं और जो भविष्य में होंगे, उन सब प्राणियों को तो मैं जानता हूँ; परन्तु मेरे को कोई (मूढ़ मनुष्य) नहीं जानता"

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानिचार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन्।।

—गीता 7/26

वे महाप्रभु अपने भक्तों के कल्याण हेतु स्थानीय जनश्रुति को एक प्रतिष्ठापूर्ण नाम दिया तथा स्थानीय कुशङ्काओं को मिटाने हेतु इस (आसाम) मातृप्रधान देश का पौराणिक परिचय दिया एवं बताया कि– ब्रह्मा के संयोग से शान्तनु मुनि की पत्नी अमोघा के गर्भ से जलस्वरूप पुत्र ने जन्म लिया, जिसे श्री मुनि लोक कल्याण हेतु इस जलमय– ब्रह्मा के पुत्र को चार पर्वतों के बीच संस्थापित किया जिससे ब्रह्मकुन्ड का अविर्भाव हुआ। पर्वतों से आवेष्ठित ब्रह्मपुत्र– जलराशि के रूप में अगाध वृद्धि पाने लगा। महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन करते हुये अपनी माता रेणुका, जो पूजा के लिए जल लाने गयी थी; गंधर्व क्रीड़ादर्शनादि के कारण विलम्ब होने के नाते, वध किया; पुन: पिता के उपदेशानुसार मातृहत्या के पाप मोक्षनार्थ पद–यात्रा करते हुए श्री परशुराम ने इसी ब्रह्मकुन्ड में स्नान व तर्पण किया तथा शान्ति एव सुख की अनुभूति की। श्री परशुराम जी ने ब्रह्मपुत्र के पूर्व की ओर से तथा सिद्धपीठ–कामरूप–कामाख्या के मध्य से सागर की तरफ प्रभावित करवा दिया। परशुराम जी ने जहाँ स्नान किया उस स्थल एवं कुन्ड का नाम " **परशुखुरामकुन्ड** " नाम से विश्व विख्यात हुआ; जो वर्तमान समय में गोहाटी से पूर्व सदिया (आसाम) के पास अवस्थित हैं। अब भी प्रतिवर्ष तीर्थ यात्री गण जनवरी (सक्रान्ति) के समय इस परशुराम कुन्ड में स्नान कर तर्पण आदि करते हुये अमोघ शान्ति पाते हैं। ब्रह्मा का पुत्र होने के कारण इसका नाम ब्रह्मपुत्र हुआ स्वयं ब्रह्मा ने इसका नाम लोहित रक्खा। (लोहित मान) सरोवर उद्गम स्थल के कारण दूसरा नाम लोहित्य भी हुआ है। कालिका पुराण में ऐसा संकेत मिलता है कि जो व्यक्ति संयम पूर्वक चैत्र मास की शुक्ल अष्टमी को स्नान करते हैं वे कैवल्य पद की सम्प्राप्ति करते हैं।

तस्मिन्नवसरे रामो जामदग्न्यः प्रतापवान।
चक्रे मातृवधं घोरमयुक्तं पितुराज्ञया।।
तस्य पापस्य मोक्षाय स्वपितुश्चोपदेशतः।
स जगाम महाकुन्डं ब्रह्माख्यं स्नातुमिच्छया।।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मातृहत्या मपानयत।
वोपी परशुना कृत्वां तं महिमाक वतारयत्।।

– कालिकापुराण 82/41/46

चैत्र मासि सिताष्टम्यां यो नरः नियोतान्दयः।
चैत्रन्तु सकलं मांस शुचिः प्रयतमानसः।।
स्नाति लोहित्यतीये तु स याति ब्राह्मणः पदम्।
लोहित्यन्तीये यः स्नाति स कैवल्यमवाप्नुयात्।।

–कालिका पुराण 83/33/36

अत: श्री प्रभु जी ने संकेत किया कि जो जीव अपने कुसंस्कारों को मिटाने, सुसंस्कार को पनपने एवं संस्कार जन्म भोग मुक्त हेतु सत्संगति, तीर्थाटन, योगी जन्य स्थानादि दर्शन हेतु

पद–यात्रा कर स्वयं (परमात्मतत्व) की अनुभूति करते हैं उन्हें उस सर्वज्ञ, सर्वसुहृद, सर्वसमर्थ ईश्वर द्वारा दृष्ट कालान्तरिक – फल और अदृष्ट–फल का प्रारब्ध लौकिक जगत के लिये समाप्त हो जाता है।

पुराणादि की कथा के अनुसार रतिपति कामदेव भगवान शिव की क्रोधाग्नि से दग्ध एवं भस्मीभूत हुये तथा पुनः उन्हीं करुणानिधान श्री प्रभु कृपा से अपना पूर्वरूप यहीं, इसी कामाख्या (कामरूप) स्थल पर प्राप्त किये, इससे इसका नाम काम–रूप पड़ा। कुब्जिका तंत्र स्वीकार करता है (तथा यहाँ के रहने वाले आदि वासी एवं असामिया वृन्द भी स्वीकृति देते हैं) कि इस स्थलः पर कामना के अनुरूप फल प्राप्त होता है अतः इसका नाम कामरूप है। (ऐसा सभी जनवासी (बंगाली) की जनश्रुति है।)

शंम्भुनेत्राग्निनिर्दग्धः काम शम्भोरनुग्रहात्।
तत्र रूपंयतः प्राप्य कामरूपं ततोऽभवत्।।

– कालिका पुराण 51/67

कामरुपं महापीठं सर्वकामफलप्रदम्।
कलो शीध्र फलं देवी कामरुपे जपोस्मृतः।।

– कुब्जिका तन्त्र सप्त पटल

योगिनी तंत्र में ऐसा वर्णन मिलता है कि संसार के सभी तान्त्रिक इन्हीं मायामयी– (प्रसाद) देवी क्षेत्र से अपनी अभिष्ट मंत्रो–सिद्धि प्राप्त करते हैं। इन बातों का भी पूर्ण वर्णन महाप्रभु जी ने अपने हस्तलेख में दिया है तथा संकेत किया है कि उनके साथ आया हुआ एक शिष्य जो बिना सम्मार्जन एवं स्व–रक्षात्मक कवच योगाभ्यास किये यहाँ के गाँव (किसी) के संकीर्तन में जाने पर विक्षिप्ततः मन्त्रमुग्ध कर दिया गया था जिसे श्री प्रभु प्रसाद स्वरूप दूसरे शिष्य अन्वेषणात्मक कर परिशुद्ध किया तथा वहाँ के लोगों को मन्त्रात्मक भाव के कुरीतियों को अपने योगबल से समाप्त एवं परिशुद्ध किया।

श्री मद्‌भागवत महापुराण, श्री रामचरित मानस, कालिका पुराण, चूड़ामणि तन्त्रादि में भगवान शिवचरित्र वर्णन में वर्णनीय एवं उल्लेखित है कि – " जिस समय सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा और विष्णु सृष्टि कार्य आरम्भ करने वाले थे, उस समय योगेश्वर शिव महायोग में तल्लीन थे। यदि सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कर्त्ताओं में कोई भी प्रमुख रहे तो सृष्टिकार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। अतः श्री ब्रह्मा जी ने अपने मानस पुत्र दक्ष को आज्ञा दी कि– हे दक्ष प्रजापति ! तुम जगन्माता की पूजा करो जिससे विश्व जननी तुम्हारी कन्यारूप में जन्मग्रहण कर भगवान शंकर की पत्नी बने। राजा दक्ष के कठोर तपस्या के बाद महामाया प्रकट होकर वर देती हुई बोलीं कि मैं तुम्हारी कन्या होकर शिव की पत्नी बनूँगी परन्तु यदि तुम मेरा अनादर करोगे तो मैं उसी समय देह त्याग दूँगी यथा समय आद्याशक्ति ने दक्ष राजपत्नी वीरिणी के गर्भ से कन्या रूप में जन्म लिया और श्री महादेव जी की आराधना कर उन्हें सन्तुष्ट किया। प्रजापति दक्ष ने अपनी कन्या का विवाह देवादिदेव महादेव शिव के साथ सम्पन्न किया और वे सती के साथ कैलाश पर्वत पर विराजमान हुये।

एक बार स्वर्ग की देवसभा में राजा दक्ष के प्रति भगवान शिव ने आदर प्रकट नहीं किया। अतः दक्ष ने शिव–रहित यज्ञानुष्ठान कर नारद को शिव–पार्वती अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व को निमन्त्रण देने का आदेश दिया। सती देवी को नारद जी तथा अन्य लोगों से मालूम हुआ कि उनके पितृ गृह में यज्ञानुष्ठान हो रहा है। शिव के मना करने के बावजूद सती ने वृद्धतापूर्वक सदाशिव से आज्ञा लेकर परिषद वर्गों के साथ पिता के यज्ञस्थल में उपस्थित हुई। सती को बिना बुलाये आये देख राजा दक्ष ने अविराम शिव–निन्दा एवं अनर्गल बातें करते रहे जिसे सती सह न सकी और पतिनिन्दा के कारण योगावलम्बन कर हृदय ज्वाला से यज्ञवेदी पर ही अपने प्राण त्याग दिये। इस समाचार को पाकर भगवान शिव ने क्रोधित होकर वीरभद्रादि सेवकों के साथ यज्ञशाला में प्रविष्ट होकर दक्ष प्रजापति का शिरच्छेदन एवं यज्ञ विध्वंस करने का आदेश दिया तथा अनुचरों ने ऐसा ही किया; बाद में दक्ष की पत्नी के प्रार्थना से आशुतोष भगवान प्रसन्न हो दक्ष के कवन्ध में बकरे का मस्तक जोड़कर उन्हें जीवित कर एवं अपने अनुचरों को कैलाश पर्वत पर भेज स्वयं सती–शव को कन्धे पर ले उन्मत सा त्रिभुवन में भ्रमण करने लगे।

स्कन्ध पुराण में वर्णन मिलता है कि ब्रह्मादि देवगणों की स्तुति स्वरूप भगवान विष्णु ने सोचा कि सती का शव एक चिन्मय वस्तु है और आदेशवर भगवान शिव के स्पर्श से इनका और भी महत्व बढ़ गया अतः जगटल्यालक विष्णु ने त्रिभुवन के कल्याणार्थ सती के शव को सुदर्शन चक्र द्वारा इक्यावन भागों में काट डाला। इस प्राचीन–पवित्र–देव–अभिलाषित भारतवर्ष के जिन–जिन स्थलों पर सती के शरीरांश गिरे वे सभी स्थान पवित्र महापीठों में अग्रगण्य हो पूजित हो गये तथा पुण्यभूमि नाम से प्रसिद्ध हुये–(!)

चक्रेण विष्णुना छिन्ना देव्या अवयवास्तु ते।
नियेतु धरणो विप्र सा सा पुण्यतरा क्षिति।।
सिद्ध पीठा समाख्याता देवानामपिभूतले।
महातीर्थानि तन्याश्वन देवानामपिभूतले।।
भूमो पतित मात्रास्ते देव्या अवयवाः किल।
जग्मुः पाषाणतां शीघ्र लोकानुग्रहहेतवे।।

– वृहद्धर्म पुराण मध्यखन्ड 10/31/35

कालिका पुराण में लिखा है कि यहाँ (गोहाणी) पर अवस्थित नीलाचल पर्वत पर सभी देवता पर्वत स्वरूप में अवस्थित हैं इस पर्वत के अखिल भूभाग को ज्ञानीपुरुष देवी का ही स्वरूप मानते हैं। पौराणिक वास्तविकता तो यह है कि सती का योनिमण्डल नीलाचल (पर्वत) के ऊपर गिरकर पत्थर बन गया और उसी प्रस्तरमय योनि में कामाख्या देवी नित्य अवस्थान करती हैं। जो मनुष्य इस शिला को स्पर्श करते हैं वे अमरत्व को प्राप्तकर ब्रह्मलोक में निवास कर अन्त समय में मोक्ष प्राप्त करते हैं–(!)

सत्यास्तु पतितं तत्र विशीर्ण योनिमण्डलम्।
शिलोत्वमगमच्छले कामाख्या तत्र संस्थिता।।

लीनपात योग निद्रायां मचि पर्वत रुपिणी।
सनीलवर्ण: शैलोऽभूत पतिते योनिमण्डले।।

– कालिका पुराण 62/55–78

वृद्धर्म पुराण संकेत करता है कि जिस स्थान पर सती का भगमण्डल गिरा उसे कुब्जिका पीठ भी कहते हैं जो नीलवर्ण ही नीलाचल पर्वत से विख्यात है।

शिवपुराण की एक आख्यायिका में वर्णन है कि दक्ष राजा के यज्ञ में प्राण त्याग के बाद गिरिराज हिमालय के घर उनकी मेनका के गर्भ से सती उत्पन्न हुई। देवी भागवत में संकेत आता है कि इन्ही अधीश्वरी से उद्भूत षडानन ने तारकासुर का वध किया। सती–पार्वती ने जिस पवित्र आदर्श को विश्व के सम्मुख स्थापित कर पति प्राप्त किया है वह प्रत्येक कन्या के लिये अनुकरणीय है ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि– तीर्थ, पतिदेव, अनिष्टदेव गुरुमंत्र और औषधि इत्यादि में जिनकी जैसी आस्था रहती है वैसी ही (उन्हें) सिद्ध होती है।

तीर्थेकान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ मन्त्रे यथोषधे।
आस्था च यादृशोयेषां सिद्धिस्तेषां च तादृशो।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण 39/(श्रीकृष्ण जन्म खन्ड)/26)

उस करुणानिधान अनन्तेश्वर भगवान योगेश्वर महाप्रभु की परम–कृपा है कि इस स्थल पर सदिया के सन्निकट कौटिल्य नगर में विख्यात राजा भीष्मक जिनकी कन्या रुक्मिणी देवी का हरण कर श्रीकृष्ण ने विवाह किया। वलिराजा के वंशज शिव भक्त वाणासुर तेजपुर (शोषितु) दरंग जिले में राज्य किया। डोमापुर (प्राचीननाम हिडिम्वपुर) में ही लाक्षागृह का निर्माण किया गया था।

कालिकापुराण में वर्णन मिलता है कि प्राग्ज्योतिषपुर (गोहाटी) में, सृष्टि के प्रारम्भ में पितामह ब्रह्मा इसी स्थान पर बैठकर नक्षयादि का सन्निवेश कर जगत की सृष्टि की।

अस्य मध्ये स्थितो ब्रह्मा प्राऽनक्षत्र ससार्जह।
ततः प्राग्ज्योतिषाख्ययं पुरी शक्रपुरी समा।।

–कालिका पुराण– 38/118

ज्योतिष शास्त्रानुसार आषाढ़ माह के मृगशिरा नक्षत्र के बाद आर्द्रा नक्षत्र के चतुर्थ चरण तक पृथ्वी ऋतुमती मानी जाती है, अतः देवी का मन्दिर अम्बवाची योग होने के नाते तीन दिन बन्द रहता है तथा अग्नि स्पर्श न करते हुये भक्त वृन्द फलाहार करते हैं।

उर्वशी कुन्ड जो, उमानन्द पहाड़ या भस्मकूट पहाड़ के दक्षिण ब्रह्मपुत्र नदी के मध्य में अवस्थित है, अति दर्शनीय स्थल है। कहा जाता है कि रुक्मिणी हरणादि के समय भगवान श्रीकृष्ण के अश्वों ने क्लान्त होकर इसी ब्रहापुत्र में जल पिया था। अतः इस स्थल का नाम अश्वक्लान्त भी है।

' मोहन ' मोहन में रमें !

अशोक त्रिवेदी

' मोहन ' मोहन में रमें, बन गुदड़ी के " लाल " ।
नश्वर देह को त्यागकर, हो गये मालामाल ।।

1– प्रभु चरणों के अनुरागी बन,
जीवन भर रहे " त्यागी " ।
साथ रहे तन मन धन से
श्री स्वामी जी " वैरागी " ।।
श्रद्धा भक्ति में डूबे रहे, प्रभुजी की लेके मशाल ।
मोहन......................

2– सादा जीवन, सादा भोजन,
सादा रहन सहन था ।
एक तरफ गृहस्थ जीवन,
एक ओर प्रभु चिंतन था ।
" सिद्धयोग " के बने दूत, हो गये पूर्ण निहाल ।
मोहन....................

3– कर्तव्य परायण, सत्य निष्ठ,
मृदुभाषी सरल हृदय थे ।
गुरु सेवा भाव कूट–कूट कर,
अपने हृदय भरे थे ।।
एक तत्व में लीन रहे, छोड़ सभी जंजाल ।
मोहन....................

4– अन्त समय काशी में रहकर,
काशी वासी हो गये ।
प्रभु रामलाल का अभयदान पा,
सद्गुरु चरणों में सो गये ।।
सद्गुरु भक्ति की दिखा गये, बन के एक मिशाल ।।
मोहन.....................

सद्गुरु चरणानुरागी
सद्शिष्य गोलोकवासी
श्री मोहन लाल अग्रवाल (लखनऊ)
को श्रद्धा सुमन
समर्पित

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

योग की प्राचीनता

विधुशेखर

इस बात को बतलाने की अब किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं कि जब से द्रव्य यज्ञों के स्थान पर ज्ञान यज्ञों का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ तब से ज्ञान यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों, बौद्धों, जैनों आदि सभी लोगों के लिए योगसाधना स्वाभाविक ही आवश्यक हो गयी, क्योंकि बिना योग के ज्ञान यज्ञ कोई चीज नहीं है। इसीलिए इन सभी लोगों के धर्मग्रन्थ जिनमें वे ग्रन्थ भी शामिल हैं जो अपौरुषेय माने जाते हैं, अर्थात् किसी मनुष्य के बनाये हुए नहीं माने जाते, योगचर्या से भरे हैं। इस प्रसंग में इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक ही है कि इस योग साधना का जन्म इस देश में ही हुआ अथवा भारतवासियों ने किसी अन्य देश के लोगों से इसे सीखा।

एक विद्वान का मत है कि वैदिक काल के उपासक महान् आशावादी थे। वे इस लोक में धन-धान्य और दीर्घायु के अभिलाषुक थे और परलोक में पितृलोक के सुख की कामना किया करते थे। अतः प्राणायाम के द्वारा शरीर को कष्ट पहुँचाना, जो योग का एक आवश्यक अंग है, उन लोगों की प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल था। वैदिक काल के आर्य लोग कतिपय अर्द्धसभ्य जातियों के सम्पर्क में आकर उन्हें समुन्नत बनाने की चेष्टा कर रहे थे। उन्हीं से इन्होंने शरीर को मूर्ति के समान अचल बनाने की क्रिया सीखी।

परन्तु उपर्युक्त विद्वान की यह धारणा युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि ऋग्वेद में ही कुछ ऐसे मुनियों का वर्णन आता है जो दिगम्बर वेश में रहते थे। तथा मटमैले पीले रंग के वस्त्र पहनते थे। यही नहीं अन्यत्र उनके मौनेय का भी वर्णन मिलता है। उक्त स्थलों में निःसंदेह योगियों का ही उल्लेख हुआ है।

इस प्रकार यह बात अनुमान से ठीक मालूम होती है कि ऋग्वेद के काल में योग साधना का प्रचार था और यह साधना भारतीय आर्यों की विशेष सम्पत्ति थी। परन्तु कुछ विद्वान जो मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में प्राप्त हुए प्राचीन ध्वंसावशेषों के आधार पर सिन्धु प्रदेश की संस्कृति का अध्ययन कर रहे हैं, उनका मत है कि वैदिक काल के आर्यों ने सिन्धु प्रदेश के अनार्य निवासियों से इस विद्या को सीखा, वे अपने मत की पुष्टि में प्रमाण यह देते हैं कि सिन्धु प्रदेश की सभ्यता वैदिक सभ्यता से बहुत पहले की है।

परन्तु यह तो उनकी कल्पनामात्र है, क्योंकि अभी तक बात संतोषप्रद रीति से सिद्ध नहीं हुई है कि सिन्धु प्रदेश की सभ्यता वैदिक सभ्यता की अपेक्षा प्राचीन है। सिन्धु प्रदेश की सभ्यता का काल ईस्वी सन् से तीन-चार हजार वर्ष पूर्व माना जाता है और ऋग्वेद, कुछ लोगों के मत में, ईसा मसीह से 2500 वर्ष पहले का माना जाता है। किन्तु कुछ विद्वान यह सिद्ध करने की चेष्टा में हैं कि ऋग्वेद ईसा मसीह से करीब 4500 वर्ष पुराना है। इस विषय का विस्तार न बढ़ाकर हम इतनी बात दावे के साथ कह सकते हैं कि वैदिक साहित्य का विकास ईसा मसीह से कम-से-कम 2500 वर्ष पूर्व अवश्य प्रारम्भ हुआ होगा, इसके लिए हमारे पास पर्याप्त प्रमाण है। ऐसी दशा में हम ऐसा मान नहीं सकते हैं कि हमें मोहन जोदड़ो तथा हड़प्पा में जो कुछ उपलब्ध हुआ है वह आर्य संस्कृति से पहले का है। अतः जब तक हमारे सामने कोई प्रबल प्रमाण नहीं रक्खे जाते तबतक हम इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं कि भारतीय आर्यों ने योग साधना अनार्यों से सीखी।

सिद्धयोग का मार्ग

सिद्धयोग का मार्ग बड़ा विलक्षण है। उसमें आह भरने की फुरसत नहीं न शिकवा करने की गुञ्जाइश। यह मार्ग विहङ्गम मार्ग है। इसमें उड़ने को निर्बाध आकाश मिल जाता है। उड़ने के लिए पंख मजबूत होने चाहिए फिर कुछ भी मुश्किल नहीं। श्री गुरुदेव का ध्यान करने से रोग ठीक हो जाते हैं। पर श्री सद्गुरुदेव की सही धारणा प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं। इसके लिये हनुमान जी जैसा हृदय चाहिए। जो हृदय फाड़कर श्रीराम को दिखा सके। यदि श्री गुरुदेव में हनुमान जैसी अनन्य निष्ठा हो तो 'ध्यानमूल गुरोर्मूर्तिः' यह सिद्धानत सबसे सरल है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा तुरीय सभी शरीरों का ध्यान करना आना चाहिए।

- आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

ध्यान-साधना की परम्परा कायम हो !

हमारे पूर्वजों ने ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल और सुख-समृद्धि का ज्ञान स्कूलों एवं कॉलेजों में जाकर नहीं लिया। उन्होंने अपनी अन्तःप्रेरणा और अनुभवों से ही सीखा कि ध्यान मन का मालिक बना देता है, अन्यथा जीवन भर मन की गुलामी ही गुलामी है। सच्ची स्वतन्त्रता मन के मालिक बनने में ही है। ध्यान हमारे भीतर के अनन्त ज्ञान को उद्घाटित करता है। इसलिए बचपन से ही ध्यान साधना की परम्परा, परिवार में, डाली जानी जरूरी है।

ध्यान-साधना से सहज-भाव अपने आप स्वास्थ्य लाभ होता है। ध्यान स्व में स्थित करता है और स्वास्थ्य शब्द का अर्थ भी-स्व स्थित, का संकेत करता है। अतः ध्यान ही स्वास्थ्य है और स्वास्थ्य ही ध्यान है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ध्यान से हमारी छिपी शक्ति जो अनन्त है, जाग्रत होती है और तब हमें स्वास्थ्य भी मुफ्त मिलता है। लेकिन हमें यह मंजूर नहीं। स्वास्थ्य का खजाना हमारे अन्दर भरा पड़ा है, परन्तु हम उसे बाहर ढूंढने का व्यर्थ श्रम करते हैं तथा रोग हटाने के चक्कर में उलझते रहते हैं। आँख बन्द कर स्वरूप को जानिये और स्थित हो जाइये। इस साधना में एक क्षण ही तो लगता है।

-मोहनलाल

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सेवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

☐☐☐☐☐☐

गुरवो बहवस्सन्ति शिष्यवित्तापहारका:
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यसंतापहारकम्

शिष्य के धन हरण करने वाले बहुत से गुरु हैं। जो शिष्य के दु:ख को हरने वाले हैं उन एक गुरु को मैं दुर्लभ मानता हूँ।

संस्थापक:- [illegible] मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए [illegible] आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सेवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14548 सम्पादक - [illegible] (डॉ.) रामलाल शर्मा